अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

❑ मूल्य : 5.00

❑ अंक : 05

❑ 16-31 अक्तूबर, 2013

❑ वर्ष : 37

नये भारत की तस्वीर

भारत का नेतृत्व करने का आह्वान मुझे अचानक किसी इलहाम की तरह नहीं मिला। वह जब मिला तो वैसे ही मिला। बल्कि ऐसा कहूं कि मुझे उसका ज्ञान धीरे-धीरे हुआ। मैंने अनशन और आत्मसंयम से अपने को उसके लिए तैयार किया। मेरा राजनीतिक कार्य आध्यात्मिक तैयारी में से ही उभरा।

आप मुझसे पश्चिम की गरीबी से पूर्व की गरीबी की तुलना करने के लिए कह रहे हैं? यह असम्भव है। दोनों की तुलना नहीं हो सकती। पूर्व में गरीबी उस हद तक है जिसकी पश्चिम में कल्पना तक नहीं की जा सकती। हजारों लोगों के पास खाने को कुछ भी नहीं है और सिर छिपाने को कोई स्थान नहीं है।

आप पूछते हैं कि यदि मुझे सत्ता प्राप्त हो जाय, तो मैं अपने स्वप्न कैसे पूरा करूंगा, ''लाखों मूक और भूखे लोगों'' को उनकी जड़ता से जगाने, मुखर बनाने और भोजन देने के लिए मैं क्या करूंगा।

मैं उनसे काम कराऊंगा—चरखे पर और हाथ-करघे पर। मैं उन्हें शिक्षा दूंगा और वह भारतीय पद्धति पर होगी।

मैं नयी सड़कें बनवाऊंगा। सुन्दर सड़कें, जो मनुष्य और पशु दोनों के लिए सुखदायी होंगी। नये भारत की जो तस्वीर मेरे मन में है उसमें गांव एक-दूसरे से जुड़े होंगे और अपने उद्योग-धन्धों से सुखी होंगे।

(जॉनबुल, 26-9-1931)

–महात्मा गांधी

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत

वर्ष : 37, अंक : 05
16-31 अक्तूबर, 2013

सर्व सेवा संघ
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

संपादक
बिमल कुमार
मो. 9235772595
प्रसार व्यवस्थापक
उमेश कुमार

मूल्य : पांच रुपये
शुल्क
वार्षिक : 100 रुपये
आजीवन : 1,000 रुपये

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ-प्रकाशन
राजघाट, वाराणसी-221 001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
sarvodayavns@yahoo.co.in
Website : sssprakashan.com

विज्ञापन दर
पूरा पृष्ठ : 2000 रुपये
आधा पृष्ठ : 1000 रुपये
चौथाई पृष्ठ : 500 रुपये

अंदर के पृष्ठों पर...

1. कविता... 2
2. लोक अधिकार संकल्प... 3
3. गांधी-वैश्वीकरण बनाम... 4
4. वर्तमान वैश्वीकरण की... 5
5. राजनैतिक ध्रुवीकरण : अर्थ... 6
6. रचनातमक कार्यकर्ताओं से... 8
7. भाषा और पर्यावरण... 10
8. जीत श्रम की ही होगी... 12
9. महिलाएं ही बचा सकती... 13
10. परमाणु ऊर्जा की... 15
11. खादी मिशन की बैठक... 16
12. लोकतंत्र का अगला कदम... 18
13. गतिविधियां एवं समाचार... 19
14. हिमालय के लिए अलग... 20
15. 45वां सर्वोदय समाज... 20

कविता

प्रकृति है माँ हमारी

–डॉ. प्रशान्त कुमार गोयल 'मानव'

पहाड़ों पर आई है विपत्ति
स्वाहा हो गये घर, प्राणि और धन-सम्पत्ति
बादल गरजे, पहाड़ हिले,
पृथ्वी और आकाश गले मिले,
नदियां उफनीं और रोईं
अविरल बहने की उनकी, जगह छोड़ी है कोई?
जरा-सी मिली जगह, कर लिया निर्माण,
अटक जायें चाहे, रहने वालों के प्राण।
प्रकृति से करी खूब छेड़छाड़,
काटे पेड़ और डेरे-तम्बू दिये गाड़,
अवैध निर्माण पर नहीं लग सकी लगाम,
स्थानीय प्रशासन जो हो गया नाकाम।
लिया फिर जब प्रकृति ने विस्तार,
आंधी, पानी-बारिश हुई खूब मूसलाधार।
नदियां उफनीं, लहराईं, हो गया जल ही जल,
जंगल, गांव, बस्ती निवासी हो गये आंखों से ओझल
डूब गये पानी में, मानव, मकान, होटल और धर्मशाला,
हजारों जीवन बह गये, बचा न सुध लेने वाला।
देख भयंकर जल प्रलय, सोचो अब कुछ करने की,
सजा मिली है मानव को, छेड़छाड़ प्रकृति से करने की।
प्रकृति से न करें खिलवाड़, वरना पड़ जाती है भारी,
आनन्द लें हम प्रकृति का, सीख लें यह सभी नर-नारी।
पेड़, नदी, पर्वत और जंगल हैं धरोहर हमारी,
प्रकृति का यह उपहार अनमोल, छाई है हरियाली।
बहने दो नदियों को अविरल,
निर्मल जल बहता है कलकल।
पेड़ों से मिलती है वायु, नदियों से शीतल जल,
पर्वत हैं सजग प्रहरी हमारे, करते रक्षा हर पल।
वृक्ष लगायें खूब, न करें नदियां प्रदूषित,
प्रकृति है माँ हमारी, जीवन वेल इसी से सिंचित।
सूरज-चाँद, नभ और तारे, सर्दी-गर्मी, वर्षा और धूप,
बिगाड़ो न कभी इस चक्र को, प्रकृति है ईश्वर का रूप।।

❑ *सर्वोदय भवन, सिविल लाइन्स, बिजनौर (उत्तर प्रदेश), मो. 9412217187*

संपादकीय

लोक अधिकार संकल्प

जन आंदोलनों के कारण लोगों की चेतना का जो विकास हुआ है, उसका प्रतिफल देखने को मिल रहा है। उच्चतम न्यायालय का एक फैसला आया। दो वर्ष या उससे अधिक अवधि के लिए जिन्हें सजा मिली है, ऐसे अपराधी चुनाव नहीं लड़ सकेंगे तथा संसद या राज्य विधायिकाओं के सदस्य नहीं रह पायेंगे। उच्चतम न्यायालय के इस फैसले के आने के बाद सभी पार्टियों में खलबली मच गयी। सभी पार्टियों का दोहरा चेहरा भी प्रकट होने लगा। लगभग सभी मुख्य पार्टियां अन्दर ही अन्दर चाहती थीं कि इस फैसले को अप्रभावी करने के लिए संसद नया कानून बनाये। पार्टियों के इस रुख को देखते हुए सरकार ने एक बिल संसद में रख भी दिया। लेकिन मीडिया एवं आम लोगों द्वारा इसकी भर्त्सना की जाने लगी। आम लोगों का रुख देखकर पार्टियों ने अपने आपको इस बिल से अलग हैं, यह दिखाना शुरू कर दिया। और, अंततः सरकार ने मंजूरी के लिए जो अध्यादेश राष्ट्रपति के पास भेजा था, उसे वापस ले लिया।

मीडिया एवं आम लोगों का विरोध बढ़कर क्या रूप लेता है, इसे सरकार पिछले दो वर्षों में कई बार देख चुकी है, विपक्षी दल भी देख चुके हैं। यदि सरकार एवं विपक्षी दल यह आश्वस्त होते कि इस बिल के पास होने से कोई जन-असंतोष नहीं फूटेगा तो यह बिल पास हो जाता।

अर्थात् संसद किस दिशा में नीतियों को ले जायेगी, यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करने लगा है कि जनता का असंतोष किस सीमा तक प्रकट होगा। संसद एवं पार्टियों के इस रुख को देखते हुए ही अब यह और अधिक स्पष्टता से समझना होगा कि लोक-शिक्षण तथा व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलनों के निरंतर चलते रहने की कितनी आवश्यकता है। संसद में कानून जरूर बनते हैं। लेकिन लोकमत एवं लोकसत्ता का प्रकटीकरण व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलनों से ही होता है। और ये व्यापक लोकतांत्रिक आंदोलन ही संसद के ऊपर नैतिक लोकसत्ता का दबाव बनने के माध्यम हो सकते हैं। आज की पार्टियों का जो चरित्र है, उसे देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि संसद जन-विरोधी कानून नहीं बनायेगी। ऐसे में पार्टियों के दायरे के बाहर क्रियाशील सभी लोकतांत्रिक शक्तियों के एकजुट होने की आवश्यकता है।

सन् 2014 में होने वाले लोकसभा चुनाव में सभी पार्टियां अपना-अपना घोषणा-पत्र जारी करेंगी। हमारा मानना है कि चुनावी राजनीति के दायरे के बाहर क्रियाशील सभी लोकतांत्रिक शक्तियों को भी अपने आगे के आंदोलनों के लिए लोगों के संकल्प को पुनर्प्रतिष्ठित करना होगा। अर्थात् लोक अपने संकल्प को ठोस रूप से प्रकट करे, इसका माध्यम तलाशना होगा। एक तरीका यह हो सकता है कि एक लोक अधिकार संकल्प पत्र (Peoples Charter) बने तथा इस लोक अधिकार संकल्प-पत्र पर देश भर में लोक शिक्षण अभियान चलाया जाये। चुनाव की घोषणा के बाद देश भर में लोक अधिकार संकल्प-पत्र पर लोगों के हस्ताक्षर/सहमति ली जाये। चुनावों के बाद पार्टी एवं संसद अपनी वैधता एवं प्रमाणिकता वोटों से हासिल करेगी। दूसरी ओर लोकतांत्रिक आंदोलन अपनी वैधता एवं प्रमाणिकता लोक अधिकार संकल्प-पत्र पर लोगों की सहमति से ग्रहण करेंगे।

संसद को यह अधिकार रहेगा कि संसद कानून बनाये तथा लोकतांत्रिक आंदोलनों को यह अधिकार रहेगा कि वे लोक-अधिकार संकल्प पत्र को लागू कराने के लिए आंदोलन चलायें।

लोक अधिकार संकल्प-पत्र ऐसा बने जिसमें 5-6 राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दे हों तथा क्षेत्रीय/स्थानीय लोगों को यह अधिकार हो कि वे इसमें कुछ क्षेत्रीय/स्थानीय महत्त्व के मुद्दे जोड़ लें। इस प्रकार यह लोगों का स्थानीय/क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर का लोक अधिकार संकल्प-पत्र बन जायेगा।

लोक अधिकार संकल्प पत्र अभियान को चलाने के लिए राष्ट्रीय, क्षेत्रीय एवं स्थानीय सभी स्तरों पर तैयारी करनी होगी। पार्टियों के दायरे के बाहर जो व्यापक लोकशक्ति व्याप्त है, उसे संगठित करने तथा सक्रिय करने का भी कार्य यह अभियान करेगा।

इस अभियान के मूल में शोषण-मुक्त, शासन-मुक्त अहिंसक समाज के निर्माण का लक्ष्य होगा। अतः जहां-जहां शोषण की व्यवस्थाएं हैं, उन व्यवस्थाओं को मिटाने का संकल्प इस संकल्प पत्र में होगा। इसी प्रकार लोकसत्ता के निर्माण का संकल्प भी इस संकल्प पत्र में होगा। जल-जंगल-जमीन व खनिज के दोहन को रोकने का संकल्प भी इस संकल्प पत्र में होगा।

पार्टियों ने अपनी तैयारी शुरू कर दी है। मीडिया भी चुनाव से जुड़ी गतिविधियों को ही महत्त्व दे रहा है। ऐसे में लोकतांत्रिक आंदोलनों से जुड़े गैर-चुनावी शक्तियों को मिलकर आगे के रोड मैप को बनाने की तैयारी में जुड़ जाना चाहिए। चुनौती इतनी बड़ी है कि अपने-अपने घरौदों को बनाये रखते हुए भी एक व्यापक धारा बनाने के काम में जुटना होगा। सर्वोदय के लोगों पर सभी लोकतांत्रिक शक्तियों का विश्वास है, अतः वे पहल करेंगे तो सब जुड़ सकेंगे। इतिहास ने आप पर यह जिम्मेदारी डाल दी है।

बिमल कुमार

गांधी : वैश्वीकरण बनाम स्वावलम्बन

❑ अविनाश चन्द्र

वैश्वीकरण की आज बहुत चर्चा है। बहुत से लोग इसे राष्ट्रों की प्रगति के आधार के रूप में देख रहे हैं। लेकिन हम गम्भीरता से विचार करें कि आखिर क्या है यह वैश्वीकरण। विश्व बैंक, अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष तथा दुनिया के विकसित कहे जाने वाले देशों के बहुराष्ट्रीय निगमों तथा बड़े-बड़े पूंजीपतियों के लिए दुनिया के सभी देशों के, खास करके विकासशील एवं गरीब देशों के दरवाजे खोले जायं और वे सभी देशों में बेरोकटोक दाखिल हो सकें और अपना आर्थिक व्यवहार चला सकें, यही है वैश्वीकरण।

यह वैश्वीकरण उदारीकरण का नकाब तो ओढ़ता है लेकिन यह किसानों, छोटे उद्योगों के प्रति कतई उदार नहीं है। उनका गला घोंटने पर उतारू है। छोटे उद्योगों को स्वच्छन्दता से निगलने की छूट बड़े उद्योगों को रहे, यही तो है उदारीकरण-वैश्वीकरण। कोई भी देश स्थानीय, क्षेत्रीय या राष्ट्रीय स्तर पर कभी स्वावलंबी न बन सके, यह इस वैश्वीकरण का ध्येय-सा लगता है। इसका ध्येय है कि राष्ट्रीय और विशेषकर अंतरराष्ट्रीय बाजार के लिए ही सभी देश उत्पादन करें। अधिक पैदा हो तो निर्यात करें, कम हो तो आयात करें। राष्ट्र या गांव को स्वावलंबी होने की जरूरत क्या है? यह आर्थिक वैश्वीकरण किसी गांव, क्षेत्र, राष्ट्र के स्वावलंबी होने का घोर विरोध करता-सा दीखता है।

लेकिन यह सिर्फ आर्थिक वैश्वीकरण है। गांधी ने कहा, 'आर्थिक मामलों में मेरा गांव ही सम्पूर्ण विश्व है। सांस्कृतिक मामलों में सारा जगत मेरा गांव है।' अर्थात् आर्थिक मामलों में ग्लोबलाइजेशन की जरूरत नहीं बल्कि लोकलाइनेशन की है। ज्ञान एवं सांस्कृतिक शुभतत्त्वों के आधार पर ग्लोबलाइजेशन ही दुनिया को शांति दे सकता है, आर्थिक आधार नहीं।

गांधी के स्वावलम्बन का आधार निम्न है :

1. सभी स्थानीय संसाधनों जैसे जल, जंगल, जमीन, प्राकृतिक साधन, मनुष्य व पशु का मल-मूत्र, युवाओं, स्त्रियों, कारीगरों का कौशल और श्रम, मनुष्य तथा पशु की ऊर्जा शक्ति का भरपूर उपयोग हो। स्थानीय नियोजन हो। इन सब कच्चे मालों से पक्का माल स्थानीय स्तर पर ही बने। इसके लिए यदि लोगों की, हमारे नेताओं की, वैज्ञानिकों की इच्छा-शक्ति और राजनैतिक इच्छा-शक्ति जागे तो एक साल के भीतर ही ऐसी तकनीक का आविष्कार किया जा सकता है जिससे सम्पूर्ण विश्व की बेरोजगारी को समाप्त किया जा सके।

2. उन चीजों का उत्पादन सबसे पहले हो जो गांव की चुभती जरूरतें (फेल्ट नीड्स) हैं। जैसे अन्न, वस्त्र, आवास, औषधी। पीने तथा सिंचाई का पानी, स्थानीय साधनों से सेन्द्रीय खाद, कीटनाशक दवाइयां, दालें, अनाज, घी, मक्खन, गुड़, चीनी आदि। यह सब प्राथमिक जरूरतें हैं। इन्हीं के उत्पादन से गांवों के लोगों को स्वावलम्बी बनाकर उन्हें जीवन दिया जा सकता है, न कि सूअर पालन, मछली पालन, ऊनी कपड़ों की बुनाई, टी. वी., रेडियो मरम्मत की दुकानों से और न ही खिलौने बनाने, मोमबत्ती आदि बनाने से। क्योंकि इनके बनाने से गांव के लोगों के पैर गांव की धरती से उखड़ जायेंगे और वे सामानों के बेचने के लिए बाजार की ओर भागेंगे। इससे मार्केट इकानॉमी ही पुष्ट होगी। बाजार पर निर्भरता ही बढ़ेगी। स्वावलम्बन के लिए लोकल इकानॉमी की भावना इससे नष्ट होगी।

3. छोटी सामाजिक इकाइयों के सभी स्थानीय लोगों की सम्पूर्ण सहभागिता पूरे आर्थिक नियोजन में होनी ही चाहिए। कोई भी व्यक्ति छूटे नहीं।

ये तीनों तत्त्व स्थायी विकास, स्थायी स्वावलम्बन के लिए आवश्यक हैं। आज तो हम देख रहे हैं कि औद्योगिक क्रांति के दो-ढाई सौ साल के बाद ही सारी दुनिया के प्राकृतिक संसाधनों का बड़े पैमाने पर दोहन कर लिया गया है और लगता है कि भावी पीढ़ी के लिए उसमें से कुछ बचेगा ही नहीं।

जो स्थायी विकास हजारों साल से चल रहा था, उस विकास का रंगरूप बदल जाने के कारण, इन दो सौ वर्षों में ही यह प्रश्नचिह्न लग गया है कि आगे इस तरह के विकास की गाड़ी कैसे चलेगी?

इसलिए स्थायी विकास, स्थायी स्वावलम्बन, स्थायी शांति की दृष्टि से दो तत्त्व और जरूरी हैं :

4. हम विकास में रिन्यूएबल रिसोर्सेस का ही आधार लें। यानी जो संसाधन प्रकृति बार-बार हमें दे सकती है, हम उन्हीं का उपयोग करें। इससे हम आगे आने वाली पीढ़ियों को भी वही लाभ देते रहेंगे जो हम लेते रहे हैं।

5. हमें उस विकास को अनैतिक मानना चाहिए जो मनुष्यों को उजाड़कर, प्रकृति को यातना देकर, प्रदूषण बढ़ाकर किया जाता हो।

आज दुनिया और भारत में अनेक स्थानों पर लगे छोटे-छोटे समूहों में स्वावलम्बन के प्रयोग कर रहे हैं। वे स्वागत-योग्य हैं। उनके और अधिक विस्तार से इसमें तेजी आयेगी। दुनिया जब-जब सही दिशा में गयी है तब-तब इन छोटे-छोटे समूहों की सक्रियता ने ही प्रकाश दिया है। लेकिन इन प्रयोगों→

वर्तमान वैश्वीकरण की निरर्थकता

❑ डॉ. रामजी सिंह

सुकरात ने कहा था कि ''मैं न तो यूनान का वासी हूं न एथेंस का, बल्कि मैं तो एक विश्व नागरिक हूं।'' इसी प्रकार विश्व के अन्य महान चिंतकों, चाहे वे हजरत मूसा हों या जरथरूस्थ, या ईसा मसीह हों या पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब, इन सब महान आत्माओं ने किसी देश विशेष या किसी जाति और नस्ल विशेष के लिए चिंतन नहीं किया था भले ही वे किसी स्थल विशेष की धरती पर अवतरित हुए हों।

कुरान शरीफ के अल-फातिहा में ''रब्बल-मुसलमिन'' नहीं बल्कि ''रब्बल-आलमिन'' कहा गया है। तो सवाल उठता है कि वैश्विक अखंडता हेतु एक ही धर्म को क्यों नहीं स्वीकार किया गया? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि मानव की प्रकृति और स्वभाव किसी यंत्र द्वारा निर्मित यानी बिलकुल समान या एक रूप नहीं होते हैं। कोई मनुष्य ज्ञान-प्रधान होता है तो कोई भाव-प्रधान और कोई ध्यान या कर्म-प्रधान। इसलिए मनुष्य के ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक और ध्यानात्मक सोच के आधार पर परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चार योगों यथा जनियोग, भक्तियोग, कर्मयोग एवं राजयोग की रचना की गयी है। लेकिन ये चारों पृथकता के प्रायद्वीप नहीं, बल्कि एक-दूसरे के सहयोगी हैं।

इसी तरह आधुनिक युग में महर्षि अरविंद ने सम्ग्रग्र-योग की अवधारणा उपस्थित की है। सच्ची समग्रता ही वैश्विकता का आधार है। मानव जीवन की समग्रता के आधार पर वैश्विक एकता और अखंडता का स्वप्न देखा गया है। भारतीय संस्कृति आरंभ से और शायद अभी तक वैश्विक दृष्टि को अपनी पहचान मानती है। इसलिए शांति पाठ में हम संपूर्ण ब्रह्माण्ड का चिन्तन करते हैं। ''वसुधैव कुटुम्बकम्'' हमारा सामाजिक और सांस्कृतिक लक्ष्य है। यही तत्त्व-मीमांसा भारतीय वैश्वीकरण का आधार है। इसलिए इसका आधार स्वार्थ नहीं परार्थ और उससे भी आगे परमार्थ है। किन्तु आज पश्चिम से आई हुई वैश्वीकरण की ध्वनि पर हमें गौर करना होगा कि उनका आधार क्या है? जब आधुनिक साम्राज्यवाद का सूर्यास्त होने लगा और पूंजीवाद भी अपने जनविरोधी कृत्य के कारण कलंकित और घृणित समझा जाने लगा तो पाश्चात्य राजनेताओं और अर्थ चिंतकों ने मिलकर एक स्वर्ण-मृग के रूप में वैश्वीकरण की अवधारण को उपस्थित किया है। जिसका आधार उदारीकरण एवं निजीकरण है।

पूंजीवाद का सिक्का जब साम्राज्यवाद के साथ विश्व मानवता के बाजार में नहीं चला तो अमेरिका ने कुछ हमदर्दों को साथ लेकर अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष, विश्व बैंक और विश्व व्यापार संगठन आदि की रचना की जो अपने अस्तित्व के लिए अभी भी घातक ''गुरिल्ला-युद्ध'' कर रहे हैं। इसमें उदारीकरण का अर्थ मुक्त व्यापार है, जिसका मूल मंत्र है पूंजीवादी लूट के लिए पूरी छूट।

आज यही सारे अंतरराष्ट्रीय संगठन दुनिया के देशों के लिए राष्ट्रीय बजट का प्रारूप तैयार कर उन पर थोपते हैं। इसलिए यह मुक्त व्यापार के बदले पूंजीवादी गिरफ्त में बंधी हुई एक नियंत्रित व्यवस्था है। यही कारण है कि विश्व की आधी जनता आज भूखी, नंगी और व्याधिग्रस्त है। मुश्किल से 10 प्रतिशत लोगों के लिए वैश्वीकरण असीम सुख-सुविधा प्रदान करता है और अधिकांश लोग दुःख और इस दैत्य के शिकार बनते हैं। विश्व संपत्ति के सर्वेक्षण के अनुसार भारत में भले ही औसत राष्ट्रीय आमदनी 45 प्रतिशत बढ़ गई हो, लेकिन यहां 78 करोड़ लोगों की औसत दैनिक आमदनी मात्र 18 रुपए हैं। कृषि अलाभकर बना दी गई है। भारत में हरित क्रांति न केवल किसानों के खिलाफ एक षड्यंत्र था बल्कि अब तो वह भारत की सदियों से उर्वरा धरती को भी अनुर्वर बना रही है। उधर भारत के गोकुल यानी पशुधन का भी ह्रास हो रहा है और अरबों रुपए का पशु मांस वैश्वीकरण के नाम पर बाहर भेजा जा रहा है। गाय के दूध के बदले हम मदर डेयरी के कृत्रिम दूध का पान कर रहे हैं।

→के संयोजन का, समन्वय का एक भगीरथ काम हमारे सामने है। उन शक्तियों को एकत्र करना विश्व पर असर बनाने के लिए बहुत आवश्यक है। अन्यथा उन सारे प्रयोगों को आज के औद्योगीकरण, वैश्वीकरण और बाजारीकरण की तेज आँधी जरा देर में ध्वस्त भी कर सकती है। अतः सघन और व्यापक दोनों तरह के माहौल बनाने की एक साथ जरूरत महसूस होती है। धन्य हैं वे जो समाज बदलाव की दिशा में सघन क्षेत्रों में काम करते हुए, विपरीत तेज आँधी के बावजूद, अपने प्रकाश-दीप को जलाये रखने में सक्षम हैं।

भारत के लोगों से विशेष पहल की अपेक्षा है। हम अपने आलस्य, जड़ता में पड़कर यह न कहें कि इस पागल दौड़ को रोकने के लिए हम कर ही क्या सकते हैं? हमें इस वैश्वीकरण, बाजारीकरण की आँधी को रोकने के लिए सक्षम बनना ही होगा। ❑

वैश्वीकरण की इसी गलत नीति के चलते भारत में 70 प्रतिशत खेत जोत के लिए यंत्रीकरण पर निर्भर हो गए हैं। जिससे करोड़ों छोटे और मझोले किसान उजड़ गए हैं। पूंजीपतियों से हम ऐसे बीज प्राप्त कर रहे हैं जिनसे उत्पन्न पौधों से प्राप्त बीज बोने लायक नहीं होते। फिर रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाओं का जहर और आर्थिक बोझ ने भारत की कृषि-व्यवस्था को मरणासन्न बना दिया है। यही कारण है कि कृषि प्रधान भारत में लगभग 2.5 लाख किसानों को आत्महत्या करने पर विवश होना पड़ा है और यह क्रम अभी तक जारी है। संक्षेप में वर्तमान वैश्वीकरण का आधार व्यक्तिगत मुनाफाखोरी और शोषण के लिए खुली छूट है। अतः यह वैश्वीकरण नहीं एक प्रकार का ''राक्षसीकरण'' है, जिसे हम नव साम्राज्यवाद के नाम से जानते हैं।

वैश्वीकरण का आधार आर्थिक समानता और शोषणहीन विश्व अर्थव्यवस्था होनी चाहिए, लेकिन उसके लिए विश्व राज्य व्यवस्था भी आवश्यक है। संकीर्ण और संकुचित राष्ट्रवाद के दिन समाप्त हो चुके हैं। राष्ट्रवाद के पागलपन और उसके वर्चस्व विस्तार की निहित अभिप्सा ने विश्व में हिंसा को महानाश के कगार पर लाकर रख दिया है। इतिहास साक्षी है कि मानवता के इतिहास में राष्ट्रवाद के नाम पर लगभग साढ़े सात हजार छोटे और बड़े रक्तपातयुक्त युद्ध हुए हैं। पिछली शताब्दी दो विश्वयुद्धों और परमाणु बम द्वारा मानव संहार की गवाह है। आज तो लगभग 40 हजार परमाणु बम और दूर-दूर तक मार करने वाले आग्नेयास्त्र मिसाइल आदि जैसे संहार के उपकरण मौजूद हैं। यदि राष्ट्रवाद के उद्वेग से कहीं तीसरा विश्व युद्ध हो जाय तो उससे सर्वनाश सुनिश्चित है। *(सप्रेस)*

राजनैतिक ध्रुवीकरण : अर्थ एवं अनर्थ

❑ बाबूराव चन्दावार

जिन राजनैतिक दलों की आपस में वैचारिक एवं सैद्धांतिक निकटता होती है, उनमें ध्रुवीकरण (पोलरायजेशन) की प्रक्रिया चलाते रहना राजनैतिक स्वास्थ्य का लक्षण माना जाता है। क्योंकि माना गया है कि वैचारिक तथा सैद्धांतिक सुनियोजित निकटता इसके द्वारा दृढ़ की जा सकती है। अर्थात् इसके आधार पर विश्वास दिलाया जाता है कि राजनीति द्वारा लोगों का प्रत्यक्ष लाभ हुआ करता है। इसे राजनैतिक सोच ही मानना होगा। इसमें राजनीति द्वारा लोगों को प्रत्यक्ष लाभ पहुंचाने का कोई संकल्प यथार्थ में होता नहीं है। राजनीति करने वाले इसे स्वीकृत नहीं कर पाते हैं। वास्तव में लोगों का लाभ क्या है, इसका राजनीति में अपना एक मतलब हुआ करता है। लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था द्वारा लोगों को लाभ पहुंचाया जाना सम्भव हो सकता है, इसकी समझ पालपोसकर रखी गयी है, जिसे संसदीय लोकतंत्र में आस्था जताने वाले दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ाते रहते हैं। इसलिए इसे मान्यता प्राप्त मूल्य कहा ही जाता है। इसकी अपनी परिभाषा कर ली गयी है। इसका मूल्य संसदीय लोकतंत्र में पुरस्कृत किया गया है। आने वाले समय में इसका क्या स्वरूप बन सकता है, इसपर सोच लेने की आवश्यकता है। संसदीय लोकतंत्र में चुनावों द्वारा उसका स्वरूप आज तक निखर कर आते रहा है, उससे भिन्न स्वरूप 2014 के लोकसभा चुनाव द्वारा निखरकर आ सकता है। इस बुनियाद में ध्रुवीकरण अवश्य होगा। इस ध्रुवीकरण में परम्परागत राजनैतिक स्थिति में परिवर्तन होगा। परम्परागत राजनीति को कालबाह्य माना जायेगा, कालोचित माना जायेगा, वह वास्तव में क्या होगा, इसकी पहचान कर लेनी होगी।

राजनैतिक ध्रुवीकरण की तीन धुरियां मानी जाती रही हैं, जिन्हें वाम, दक्षिण तथा मध्य धुरियां कहा जाता रहा है। वामपंथी दलों, दक्षिणपंथी दलों तथा मध्यमार्गी दलों की राजनीति होती रही है। इन्हीं तीन धुरियों में ही ध्रुवीकरण की प्रक्रिया चलती रही है। वामपंथी दलों में नक्सली-माओवाद का उग्रपंथी नवनिर्माण हो गया है जो संविधान सम्मत संसदीय लोकतंत्र की बुनियाद को मानता नहीं है। दक्षिण पंथी दलों में भी धर्म-सम्प्रदायों के अनुशासन का प्रभुत्व निर्माण हो गया है, जो फासीवाद को अपनाये हुए है। नक्सली-माओवाद का उग्रपंथ तथा धर्म-सम्प्रदायों द्वारा अनुशासित फासीवाद राजनैतिक ध्रुवीकरण में शामिल हो गये तो राजनैतिक ध्रुवीकरण का स्वरूप लोकतांत्रिक सीमा में नहीं रह पायेगा। उग्रता तथा फासीवाद की तानाशाही में जाने की सम्भावना बन सकती है। लोकतांत्रिक सीमा में जिन लोकतांत्रिक दलों ने अपना अस्तित्व बना कर रखा है वे इस पर क्या सोच पाते हैं, देखना-समझना होगा। राजनैतिक सत्ता पाने की प्रतियोगिता एवं प्रतिस्पर्द्धा को महत्त्व देकर लोकतंत्र में मानने वाले सभी दल अपनी गतिविधियां चलाते हैं तो उनके द्वारा लोकतांत्रिक सीमा में चलते रहने की निष्ठाएं कमजोर या शिथिल हो जा सकती हैं। वे अपना लोकतांत्रिक संतुलन नहीं बनाये रख पायेंगे। सत्ता पाने की लालसा यदि राजनैतिक दलों की बरकरार रहती है तो निर्णायक तौर पर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। यदि नक्सली-माओवाद उग्र दिशा वामपंथ की ओर मुड़ना चाहेगा और दक्षिण पंथ धर्म-सम्प्रदायों के अनुशासन की दिशा में मुड़ेगा तब वामपंथ उग्रवाद की दिशा में जा सकता है तथा दक्षिण पंथ फासीवाद की

गिरफ्त में चला जा सकता है। वामदलों तथा दक्षिण पंथ की लोकतांत्रिक सीमा सत्ताकांक्षा के चलते टूटकर निरस्त हो सकती है। रहा सवाल मध्यमार्गी दलों का। इनका जो चरित्र रहा है उसके आधार पर मध्यमार्गी सभी दल अवसरवादी बनकर ही रह पायेंगे। इनसे लोकतांत्रिक निष्ठाओं को बचाये रखना एवं राजनीति करना सम्भव नहीं है। राजनैतिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया यदि तेज हो जाती है तो नक्सली-माओवादी उग्रवाद तथा धर्म-सम्प्रदायों का मुकाबला कर पाने की एक समस्या बन सकती है। 2014 में होने जा रहे लोकसभा के चुनाव संसदीय लोकतंत्र के लिए चुनौती पैदा करेंगे इसमें संदेह नहीं करना चाहिए।

राजनीति हमेशा ही स्वामित्व के भाव से प्रेरित रहती है। हम चाहें न चाहें राजनीति रहेगी और उसके जो भी परिणाम होंगे उन्हें रोका नहीं जा सकेगा। इसका एहसास (स्व.) गोपालकृष्ण गोखले को जब स्वाधीनता आंदोलन चल रहा था उसके प्रारम्भिक काल में हो गया था। उन्होंने कहा था, 'राजनीति का अध्यात्मीकरण' किया जाना चाहिए। महात्मा गांधी ने इसे समझ लिया था और मान भी लिया था। इसलिए उन्होंने राजनीति में अध्यात्मिकता लाने का प्रयास भी किया था। वह उस समय कितना सध पाया होगा, कह नहीं सकते। राजनीति को अध्यात्म की ओर मोड़ने के लिए जो प्रयास करने की आवश्यकता महात्मा गांधी को लगी थी उस पर अमल करने का प्रयास उन्होंने अपने जीवनकाल में किया ही था। विनोबाजी तो पूरी तरह से राजनीति से मुक्त रहे थे। सर्वोदय आंदोलन पूरी तरह राजनीति से मुक्त रहे, इसका पूरा ध्यान उन्होंने रखा था। जेपी महात्मा गांधी की तरह राजनीति में अवश्य थे। पर वे सत्ताकांक्षा की राजनीति में कभी नहीं रह पाये। हमेशा ही उससे हटकर रहे। भारत के राजनैतिक इतिहास में सत्ताकांक्षा की राजनीति से हटकर रहने का जेपी का आचरण अनोखा माना गया, जिसका आकर्षण (स्व.) डॉ. राममनोहर लोहिया को भी हुआ था। डॉ. लोहिया राजनीति में थे। उन्हें जेपी की तरह सत्ताकांक्षी राजनीति से हटकर रह पाना सम्भव नहीं हो पाया था। स्वाधीनता आंदोलन के वरिष्ठ नेता (स्व.) गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गांधी, विनोबा, जेपी तथा डॉ. लोहिया तक स्वाधीनता आंदोलन द्वारा जो संकल्प प्रस्तुत किया गया था, उसके साथ राजनीति का अनुबंध बनकर रहे इसका खयाल अवश्य रखा गया था। इस अनुबंध में अध्यात्मिकता द्वारा राजनीति स्वाधीनता के संकल्प से ओतप्रोत हो पाये इसका एक 'सूत्र' बन गया था। लेकिन स्पष्ट हो गया है कि सत्ताकांक्षा के चलते उस 'सूत्र' को अबाधित रख पाना वास्तव में सम्भव नहीं है। इसलिए राजनीति के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया में अध्यात्म तथा स्वाधीनता आंदोलन के सभी संकल्प महत्त्वपूर्ण नहीं रह पाये हैं। राजनैतिक ध्रुवीकरण की दिशा में इस देश के सभी राजनैतिक दल आगे बढ़ते हुए देखे गये हैं। इसलिए जेपी ने 'भारतीय राज्य व्यवस्था की पुनर्रचना का एक सुझाव' सितंबर, 1959 में सर्व सेवा संघ द्वारा प्रस्तुत करवाया था। उस पर गम्भीरता से सोचने की इस समय जरूरत महसूस हो रही है। क्योंकि राजनैतिक तथा समग्र ध्रुवीकरण की भूमिका स्पष्ट करने के लिए जो सुझाव दिये गये हैं वह सब इस समय प्रासंगिक हो गये हैं।

राजनैतिक ध्रुवीकरण की प्रक्रिया चलती रहेगी। वह मात्र सत्ता पाने की राजनीति से प्रेरित एवं प्रभावित होकर चलायी गयी तो जो निष्पन्न होने की स्थिति बनेगी वह संसदीय लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाने की नहीं रह पायेगी। क्योंकि सत्ता पाने की आकांक्षा संसदीय लोकतंत्र के प्रति आस्था जताने वाली नहीं रह पायेगी। इस समय जो राजनैतिक दल 2014 के लोकसभा चुनाव को लेकर सक्रिय हुए हैं, इस सक्रियता के चलते जिस ध्रुवीकरण की कल्पना वे करने लगे हैं वह संसदीय लोकतंत्र को, उसकी संवैधानिक बुनियाद को चुनौती दे सकती है। भारतीय संविधान की बुनियाद पर संसदीय लोकतंत्र स्थिर किया जाना वस्तुतः अपेक्षित है, वह संदिग्ध अवस्था में जा सकता है। राजनैतिक दलों की जो गतिविधियां दिखने लगी हैं वह मात्र हर तरह के उपायों द्वारा राजनैतिक सत्ता प्राप्त करने तक ही सीमित है। ये दल सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य को ही महत्त्व देकर भारत का संविधान तथा संसदीय लोकतंत्र दोनों का महत्त्व समाप्त कर देने की दिशा में बढ़ सकते हैं। भारत को अराजकता की ओर अवश्य धकेल सकते हैं। उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरनगर में जिस साम्प्रदायिक दंगे को उकसाया गया उससे राष्ट्रव्यापी अराजकता उमड़कर आने के लक्षण स्पष्ट होने लगे हैं। 2014 का लोकसभा चुनाव नजदीक आने तक राष्ट्र में कई तरह की हिंसक घटनाएं हो सकती हैं। इसलिए 2014 का लोकसभा चुनाव भारत के संविधान तथा संसदीय लोकतंत्र के लिए भी चुनौतियां खड़ी कर ही सकता है, यह मानना होगा।

जो भारत की स्वाधीनता में विश्वास करते हैं उनका अपना एक दायित्व बनता है। संसदीय लोकतंत्र के प्रति मतदाताओं का जो दायित्व हो सकता है उसके ऊपर का श्रेष्ठतम दायित्व वह होगा इसे स्वाधीनता के प्रति दायित्व निभाने के लिए ही आजमाना होगा। इस पर सोचकर समय रहते दायित्व निभाने की गतिविधियां चलानी होंगी। ❑

❑ *डी-1, 13, सईनगर, सिंहगढ़ रोड, पुणे-411030 (महाराष्ट्र), फोन : 020-24250693*

गतांक से आगे

रचनात्मक कार्यकर्ताओं से अपेक्षाएं

❑ न्यायमूर्ति चन्द्रशेखर धर्माधिकारी

संस्थाओं में सदस्यता और मानवीय संबंध : संस्था में सदस्यता रहती है। जहां केवल सदस्यता या सभासदत्व ही रहता है, वहां 'नाते' नहीं बनते। सदस्यता रद्द हो सकती है। त्यागपत्र प्रायः नाराजीनामा होता है। जो दे सकते हैं वे संबंध तोड़ सकते हैं। परंतु कौटुम्बिक भावना व बंधुत्व एक नाता होता है। उससे त्यागपत्र नहीं दिया जाता, वह टूट नहीं सकता। सदस्यता की जगह नाते जोड़ने के लिए आपसी संबंधों का शुद्धीकरण आवश्यक है। सदस्यता न रहे व नातेदारी बने, इसके लिए समाज का स्वरूप और मर्यादा कौटुम्बिक भावना पर आधारित होनी चाहिए। सभासदत्व औपचारिक होता है, नाते-रिश्ते हार्दिक होते हैं। सभासदत्व संगठनात्मक होता है, संस्थात्मक रहता है। नाते-रिश्ते व्यक्ति, व्यक्ति के होते हैं। यही अध्यात्म है। मेंबरशिप के स्थान पर रिलेशनशिप उसका आदर्श है।

'समाजसेवा' समाज-परिवर्तन का भी साधन है। मनुष्य-मनुष्य में पारस्परिक संबंध बनते समय, हम जैसे समाज की अपेक्षा रखते हैं, उसके अनुरूप संस्था होनी चाहिए। समाज का नियमन, खाली समाज के लोगों का नियमन, उनके संबंधों का नियमन केवल प्रशासन नहीं है। रोटी में कण जितना चोकर खप जाता है, पर यदि चोकर ही चोकर रहेगा तो? आज समाज-संस्था में हिसाब-किताब के बारे में लापरवाही गैरजवाबदारी है। ऑडिटर्स जरूरी हो गये हैं। इस नाम से सरकारी नियंत्रण बढ़ गया है। कुछ बातें 'नेसेसरी ईविल' हैं, यह हम भूल जाते हैं।

और कहीं पाप किये हों तो गंगा में स्नान करके धो सकते हैं, मुक्त हो सकते हैं, पर यदि गंगा के तट पर ही पाप किये हों तो कहां धोयेंगे? समाजसेवा के क्षेत्र में भी घमंड और दम्भ उछल-कूद रहा है। तपस्याच्युत होने पर जो राक्षस होता है, वह बीच में कहीं रुक ही नहीं सकता। इसी के कारण अशासकीय स्वयंसेवी संस्थाएं संदर्भहीन हो रही हैं, ऐसा आभास होता है, परंतु यह सच नहीं है।

'निष्काम कर्म, निष्काम सेवा' शब्दों का प्रयोग न जानते हुए भी हम करते रहते हैं। भगवद्गीता में भी 'निष्काम कर्म' शब्द है। जिस कर्म में लक्ष्य, कीमत और लाभ नहीं होगा, बल्कि कर्म का ही महत्त्व होगा, वह है निष्काम कर्म। निष्काम का अर्थ निरुद्देश्य नहीं है। मूर्खातिमूर्ख आदमी भी बिना प्रयोजन काम नहीं करेगा। प्रत्येक कार्य के साथ प्रयोजन तो रहेगा ही और उसका परिणाम भी होगा। प्रयोजन-परायणता रहे, परंतु परिणाम-परायणता महत्त्वपूर्ण नहीं है, यह निष्काम कर्म की मर्यादा है। अन्य कोई हेतु नहीं है, ऐसा कर्म। अर्थात् निष्काम कर्म व अवांतर हेतु रहित कर्म यथासम्भव स्वयंपूर्ण हो। मुख्य प्रश्न यह है कि स्वयंसेवी संस्था कहां तक स्वयंसेवी और स्वावलंबी है। गांधीजी कहते थे कि "स्वयंसेवी संस्था स्वावलंबी रहे। संस्था में कार्य करनेवाला कार्यकर्ता संस्था पर अवलंबित न रहे और संस्था सरकार तथा धनीमानी व्यक्तियों पर अवलंबित न रहे।" तथा "जो सरकारी होता है, वह असरकारी अर्थात् परिणामकारी नहीं होता। जो महत्त्वाकांक्षी होते हैं, उनका कोई महत्त्व नहीं रहता।" ऐसा आचार्य विनोबाजी कहते थे।

फिर यह प्रश्न उठता है कि संस्था चलायी कैसे जाय? उसका आधार क्या? पहले तो यह स्वीकार करना होगा कि संस्था को सत्ता और सम्पत्ति वालों से प्राप्त सहायता बिना किसी शर्त के मिलनी चाहिए। संस्थाएं सत्ता और सम्पत्ति से निरपेक्ष रहें यानी मुख्यतः नागरिकों के सहयोग पर खड़ी रहें, टिकी रहें। सरकारी या सम्पत्तिवानों की सहायता का निषेध नहीं है, पर किसी प्रकार का नियंत्रण न रहे, सहायता सशर्त न रहे। वह सहायता दान के रूप में रहे, न कि कर बचाकर कर के पैसे के रूप में। वास्तव में वह शेअरिंग या सहभागिता के रूप में रहे। चार भाइयों में एक भाई कुछ नहीं कमाता, शेष तीन भाई मददगार के रूप में उसकी गृहस्थी चलाते हैं। यह न तो दान है और न दया है। यह शेअरिंग है। चारों भाई मिलकर रहते हैं, यह कहा जाता है। चंदा, अनुदान, दान आदि को स्वयं की इच्छा, प्रेरणा से किया गया समर्पण कहा जा सकता है। सहायता इस रूप में ली जायेगी कि जिससे सत्य औ स्वत्व की हानि न हो।

महात्मा गांधीजी के ट्रस्टीशिप-विचार का आशय यही है कि व्यक्ति अपनी कमाई या सम्पत्ति का मालिक नहीं है, बल्कि ट्रस्टी या विश्वस्त है। आचार्य विनोबाजी ने भूदान-आंदोलन के समय जमीन वालों से भूमिहीनों के लिए छठा हिस्सा मांगा था और सर्वोदयपात्र की योजना भी सबके लिए रखी थी। उन्होंने कहा था कि इस पात्र में एक मुट्ठी अनाज डाला जाय या निश्चित राशि डाली जाय, जिसका उपयोग सामाजिक कार्यों में होगा। ऐसी योजना बनाकर समाजसेवकों के खर्च आदि की सुविधा

करना क्या संभव है? इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करना जरूरी है। समाजकार्य के लिए प्राप्त इस राशि का विनियोग ठीक ढंग से व्यवस्थित हिसाब रखकर समाजसेवक करें, यह उनका कर्तव्य रहेगा। मैं लोकसेवक हूं तो मेरा शरीर-धारण कार्य भी सामाजिक कार्य है, यह समझकर उस राशि का समुचित ढंग से विनियोग करना होगा और वह हिसाब जांचने के लिए खुला रहना चाहिए। उसमें पारदर्शिता रहनी चाहिए और खर्च भी कम-से-कम आवश्यकतानुसार 'इदं न मम' भाव से करना होगा।

समाज-परिवर्तन : संदर्भ-परिवर्तन : सेवा-संस्था या उद्देश्य समाज-परिवर्तन और संदर्भ-परिवर्तन का भी रहना जरूरी है। सबका मिल-जुलकर काम करने का एक आधार रहना चाहिए, जिसका नाम है 'संस्था'। इसमें मुख्य है मनुष्य और गौण है संगठन। संगठन का हित यानी संगठन में या जिनके लिए संगठन या संस्था का निर्माण हुआ उन लोगों का सामूहिक हित। एक तत्त्व या ध्येय के आधार पर लोगों के एकत्र आने पर संस्था में सौहार्द, पारस्परिकता, विधान या नियमों की अपेक्षा संस्था का स्थायित्व प्रमुख आधार है। इस पर ध्यान नहीं दिया गया तो संस्था के विधान और नियम का महत्त्व बढ़ जाता है। फिर 'नियमबाजी' शुरू होती है। जहां नियमों का ही महत्त्व होता है, वहां नियमों में से रास्ता निकालने का निरंतर प्रयास होता रहता है। निठल्ले, उपद्रवी या कुतर्की लोगों के लिए वह मनोरंजन का कार्यक्रम बनता है। ऐसे तंत्र में अनुभवी और निष्णात लोगों का उपद्रव बढ़ता है, झगड़ेबाजी, कोर्टबाजी बढ़ती है। वास्तव में सबको मिल-जुलकर काम करना हो तो सौहार्द या सहज स्फूर्ति की अधिक आवश्यकता है। काम के प्रति रुचि और सहज स्फूर्ति की प्रेरणा संस्था का अधिष्ठान है। रुचि और स्फूर्ति की प्रेरणा रहे, तो स्वार्थ में कमी आती है।

इधर सार्वजनिक संस्थाओं में, कार्यकर्ताओं के मन में आत्मग्लानि की भावना बढ़ रही है, क्योंकि निरपेक्षता में भी कार्य का मोह और आसक्ति बढ़ रही है, प्रसिद्धि की भी कामना बढ़ रही है। यह संस्था के प्रति आसक्ति है। जहां संस्था के प्रति आसक्ति और मोह नहीं रहेगा, उसी संस्था का काम सामर्थ्यशील होगा। ऐसे कार्य से ही सत्व और स्वत्व विकसित होता है। इस विषय में महात्मा गांधी की तरह ही एक और तैयारी रखनी होगी। गांधीजी ने लोककल्याण के लिए निर्मित संस्था का स्वयं ही विसर्जन कर दिया था। संस्थाओं की उपयुक्तता समाप्त होने पर लोगों पर संस्था का कोई परिणाम या असर नहीं होता या उसमें कार्यरत कर्मचारियों का विकास नहीं होता, तब संस्था का न रहना ही उचित है। संस्था के कार्यकर्ता अधिक आत्मवान नहीं बन रहे हैं, यह जब उन्हें लगा, उसी क्षण उन्होंने संस्था विसर्जित कर दी। संस्था प्रारंभ करना और विसर्जित करना कोई खेल नहीं है। पर जब प्रतीत होने लगा कि लोगों के और कार्यकर्ताओं के हित में संस्था पोषक नहीं है, तब तत्काल उन्होंने वैसी संस्थाएं विसर्जित कर दीं, क्योंकि वे गांधीजी की संस्थाएं थीं। उनमें संस्थावाद नहीं था। संस्थावाद यानी संस्था मनुष्य से भारी और जिनकी सेवा अभिप्रेत है वे केवल साधन और उपकरण हैं। समाजसेवी संस्था का 'मनुष्य' उपकरण या साधन नहीं होता, अधिष्ठाता होता है। ऐसी संस्था व्यक्तिनिष्ठ या विधाननिष्ठ नहीं, मानवनिष्ठ होती है। इनमें चुनाव नहीं होता, बल्कि स्वयं प्रेरणा से और कार्यनिष्ठा, कर्तव्यनिष्ठा से स्वेच्छापूर्वक कार्य करनेवाले होते हैं। ऐसे कार्यकर्ताओं के संघ को 'कैडर' कहा जाता है। ऐसा कार्यकर्ता लोकनिष्ठ होता है, लोकात्मा पर उसे विश्वास होता है। उसमें आत्मप्रत्यय के साथ-साथ स्वतंत्र सत्व और स्वत्व होता है। वह समाज को अपने साथ आगे ले जाता है। यही सच्चे कार्यकर्ता का चरित्र है। हम यह भी मानते हैं कि संस्था और कार्यकर्ता सरकार पर अवलंबित न रहे, क्योंकि इससे वृत्ति निःस्पृह नहीं रहती, नियंत्रण और दबाव की रहती है; फिर जो पैसा देता है, वह मालिक बन जाता है। इससे आत्मग्लानि पैदा होती है। ऐसी स्थिति उत्पन्न न हो, इतनी शक्ति कार्यकर्ता में आनी और रहनी चाहिए। यही कार्यकर्ता का चारित्र्य और निःस्पृहता है। ऐसी संस्थाएं ही सहजीवन की प्रयोगशालाएं हैं।

कहा जाता है कि संस्था की आत्मा नहीं होती—कार्पोरेशन हैज नो सोल। यह उक्ति सरकार, सरकारी और अ-सरकारी संस्थाओं के विषय में सही है। लेकिन जहां मानवनिष्ठा होगी, उस संस्था पर यह उक्ति लागू नहीं होती। ऐसी स्वायत्त संस्था ही इस समय की आवश्यकता है। ऐसी संस्थाओं की भूमिका ही लोक-कल्याणकारी होती है। 'भूमिका' शब्द के दो अर्थ हैं—एक 'रोल' और दूसरा 'ऐटीट्यूड' यानी मनोवृत्ति। समाज के प्रति जो मनोवृत्ति होती है, उसे सोशल 'ऐटीट्यूड' कहते हैं, और रोल का अर्थ है व्यवहार का समाज पर होने वाला असर। समाजसेवी संस्थाओं में दोनों का समान महत्त्व है। इसलिए गैर-सरकारी समाजसेवी संस्थाओं में विधायक और सेवाकार्य तक ही सीमित, सेवावृत्ति और विधायक वृत्ति आवश्यक है। समाज के जीवन-विकास के लिए जो अनुकूल हो, वह विधायक प्रतिभा और सेवावृत्ति। ऐसी संस्था के कार्यकर्ताओं में सेवा-कार्यों में रुचि और रस होना→

भाषा और पर्यावरण

❑ अनुपम मिश्र

किसी समाज का पर्यावरण पहले बिगड़ना शुरू होता है या उसकी भाषा-हम इसे समझकर संभल सकने के दौर से अभी तो आगे बढ़ गए हैं। हम 'विकसित' हो गए हैं।

भाषा यानी केवल जीभ नहीं। भाषा यानी मन और माथा भी। एक का नहीं, एक बड़े समुदाय का मन और माथा जो अपने आसपास और दूर के भी संसार को देखने-परखने-बरतने का संस्कार अपने में सहज संजो लेता है। ये संस्कार बहुत कुछ उस समाज की मिट्टी, पानी, हवा में अंकुरित होते हैं, पलते-बढ़ते हैं और यदि उनमें से कुछ मुरझाते भी हैं तो उनकी सूखी पत्तियां वहीं गिरती हैं, उसी मिट्टी में खाद बनाती हैं। इस खाद यानी असफलता की ठोकरों के अनुभव से भी समाज नया कुछ सीखता है।

लेकिन कभी-कभी समाज के कुछ लोगों का माथा थोड़ा बदलने लगता है। यह माथा फिर अपनी भाषा भी बदलता है। यह सब इतने चुपचाप होता है कि समाज के सजग माने गए लोगों के भी कान खड़े नहीं हो पाते। इसका विश्लेषण, इसकी आलोचना तो दूर, इसे कोई क्लर्क या मुंशी की तरह भी दर्ज नहीं कर पाता।

इस बदले हुए माथे के कारण हिंदी भाषा में 50-60 बरस में नए शब्दों की एक पूरी बारात आई है। बारातिये एक-से एक हैं पर पहले तो दूल्हे राजा को ही देखें। दूल्हा है विकास नामक शब्द। ठीक इतिहास तो नहीं मालूम कि यह शब्द हिंदी में कब पहली बार आज के अर्थ में शामिल हुआ होगा।पर जितना अनर्थ इस शब्द ने पर्यावरण के साथ किया है, उतना शायद ही किसी और शब्द ने किया हो। विकास शब्द ने माथा बदला और फिर उसने समाज के अनगिनत अंगों की थिरकन को थामा। अंग्रेजों के आने से ठीक पहले तक समाज के जिन अंगों के बाकायदा राज थे, वे लोग इस भिन्न विकास की 'अवधारणा' के कारण आदिवासी कहलाने लगे। नए माथे ने देश के विकास का जो नया नक्शा बनाया, उसमें ऐसे ज्यादातर इलाके 'पिछड़े' शब्द के रंग से ऐसे रंगे गए, जो कई पंचवर्षीय योजनाओं के झाड़ू-पोंछे से भी हल्के नहीं पड़ पा रहे। अब हम यह भूल ही चुके हैं कि ऐसे ही 'पिछड़े' इलाकों की संपन्नता से, वनों से, खनिजों से, लौह-अयस्क से देश के अगुआ मान लिये गए हिस्से कुछ टिके से दिखते हैं।

कुछ मुट्ठी भर लोग पूरे देश की देह का, उसके हर अंग का विकास करने में जुट गए हैं। ग्राम-विकास तो ठीक, बाल-विकास, महिला-विकास सब कुछ लाईन में है।

अपने को, अपने समाज को समझे बिना उसके विकास की इस विचित्र उतावली में ग़ज़ब की सर्वसम्मति है। सभी राजनैतिक दल, सभी सरकारें, सभी सामाजिक संस्थाएं, चाहे वे धार्मिक हों, मिशन वाली हों, वर्ग-संघर्ष वाली-गर्व से विकास के काम में लगी हैं, विकास की इस नई अमीर भाषा ने एक नई रेखा भी खींची है—गरीबी की रेखा। लेकिन इस रेखा को खींचने वाले संपन्न लोगों की गरीबी तो देखिए कि तमाम कोशिशें रेखा के नीचे रहने वालों की संख्या में कमी लाने

→चाहिए। इसके समान दूसरा कोई प्रेरक तत्त्व नहीं है। स्वयं प्रेरणा उसका मूल तत्त्व है। इसी को सोशल इन्सेन्टिव कहा जाता है और यह मानवीय रहनी चाहिए। इसी को ह्यूमन इन्सेन्टिव कहा जाता है।

यश-अपयश? : अन्त में, यश-अपयश का अर्थ क्या है? ये संस्थाएं गांधी, विनोबा, जयप्रकाश इस त्रिमूर्ति के आधार पर अवस्थित हैं। यह ठीक है कि गांधीजी के सपनों का भारत बन नहीं पाया। विनोबाजी की भू-क्रांति या साम्ययोग की योजना प्रत्यक्ष अस्तित्व में नहीं आयी और जयप्रकाशजी की संपूर्ण क्रांति अपूर्ण ही रह गयी। लेकिन यह अपयश (असफलता) नहीं है, अल्पयश है। जयप्रकाशजी की सफलता-विफलता का मापदंड भिन्न था, और गांधीजी कहते थे—प्रत्येक हितकारी आंदोलन की पांच अवस्थाएं होती हैं—उदासीनता, उपहास, निन्दा, दमन और आदर। इनमें से किस सीढ़ी पर सर्वोदयी संस्था खड़ी है, यह जनता तय करे। पर इन संस्थाओं के रूप में समाज में समाज-परिवर्तन के सपने देखने वाली सज्जन-शक्ति का अस्तित्व है, यह तो मानना ही होगा। यही इन संस्थाओं का वास्तविक यश है। पूर्व कथनानुसार यह भी मानना होगा कि जटायु का अपयश रावण के यश से सब दृष्टियों से श्रेष्ठ था। ऐसा उदात्त अपयश (असाफल्य) सर्वोदय-संस्थाओं के भाग में आया, तो भी वही उनका मंगलमय यश है, क्योंकि वर्तमान परिस्थिति में भी ये संस्थाएं ही परिवर्तन के प्राणभूत केन्द्र हैं, जिनसे समाज और देश को जीवनदायी प्राणवायु मिल सकती है। इन सारे प्राणदायी सहयोगियों को सादर प्रणाम।

('लोकतंत्र, न्याय एवं राहों के अन्वेषी' से)

❑

के बदले उसे लगातार बढ़ाती जा रही हैं।

पर्यावरण की भाषा इस सामाजिक-राजनैतिक भाषा से रत्ती-भर अगल नहीं है। वह हिंदी भी है यह कहते हुए डर लगता है। बहुत हुआ तो आज के पर्यावरण की ज्यादातर भाषा देवनागरी कही जा सकती है। लिपि के कारण राजधानी में पर्यावरण मंत्रालय से लेकर हिंदी राज्यों के कस्बों, गांवों तक के लिए बनी पर्यावरण संस्थाओं की भाषा कभी पढ़ कर तो देखें। ऐसा पूरा साहित्य, लेखन, रिपोर्ट सब कुछ एक अटपटी हिन्दी से पटा पड़ा है।

कचरा-शब्दों का और उनसे बनी विचित्र योजनाओं को ढेर लगा है। इस ढेर को 'पुनर्चक्रित' भी नहीं किया जा सकता। दो-चार नमूने देखें। सन् 80 से आठ-दस बरस तक पूरे देश में सामाजिक वानिकी नामक योजना चली। किसी ने भी नहीं पूछा कि पहले यह तो बता दो कि असामाजिक वानिकी क्या है? यदि इस शब्द का, योजना का संबंध समाज के वन से है, गांव के वन से है तो हर राज्य के गांवों में ऐसे विशिष्ट ग्रामवन, पंचायती वनों के लिए एक भरा-पूरा शब्द-भंडार, विचार और व्यवहार का संगठन काफी समय तक रहा है। कहीं उस पर थोड़ी धूल चढ़ गई थी तो कहीं वह मुरझा गया था, पर वह मरा तो नहीं था। उस दौर में कोई संस्था आगे नहीं आई इन बातों को लेकर। मरुप्रदेश में आज भी ओरण (अरण्य से बना शब्द) है। ये गांवों के वन, मंदिर देवी के नाम पर छोड़े जाते हैं। कहीं-कहीं तो मीलों फैले हैं ऐसे जंगल। इनके विस्तार की, संख्या की कोई व्यवस्थित जानकारी नहीं है। वन विभाग कल्पना भी नहीं कर सकता कि लोग ओरणों से एक तिनका भी नहीं उठाते।

अकाल के समय में ही इनको खोला जाता है। वैसे ये खुले ही रहते हैं, न कँटीले तारों का घेरा है, न दीवारबंदी ही। श्रद्धा, विश्वास का घेरा इन वनों की रखवाली करता रहा है। हजार-बारह, सौ बरस पुराने ओरण भी यहां मिल जाएंगे। जिसे कहते हैं बच्चे-बच्चे की जबान पर ओरण शब्द रहा है पर राजस्थान में अभी कुछ ही बरस पहले तक सामाजिक संस्थाएं, श्रेष्ठ वन विशेषज्ञ या तो इस परंपरा से अपरिचित थे या अगर जानते थे तो कुछ कुतूहल भरे, शोध वाले अंदाज में। ममत्व, यह हमारी परंपरा है, ऐसा भाव नहीं था उस जानकारी में।

ऐसी हिंदी की सूची लंबी है, शर्मनाक है। एक योजना देश की बंजर भूमि के विकास की आई थी। उसकी सारी भाषा बंजर ही थी। सरकार ने कोई 300 करोड़ रुपया लगाया होगा पर बंजर-की-बंजर रही भूमि। फिर योजना ही समेट ली गई। और अब सबसे ताजी योजना है जलागम क्षेत्र विकास की। यह अंग्रेजी के वॉटरशेड डेवलपमेंट का हिंदी रूप है। उससे जिनको लाभ मिलेगा, वे लाभार्थी कहलाते हैं, कहीं हितग्राही भी हैं। 'यूजर्स ग्रुप' का सीधा अनुवाद उपयोगकर्ता समूह भी यहां है। तो एक तरफ साधन संपन्न योजनाएं हैं, लेकिन समाज से कटी हुई। जन भागीदारी का दावा करती हैं पर जन इनसे भागते नजर आते हैं तो दूसरी तरफ मिट्टी और पानी के खेल को कुछ हजार बरस से समझने वाला समाज है। उसने इस खेल में शामिल होने के लिए कुछ आनंददायी नियम, परंपराएं, संस्थाएं बनाई थीं। किसी अपरिचित शब्दावली के बदले एक बिलकुल आत्मीय ढांचा खड़ा किया था। चेरापूंजी,, जहां पानी कुछ गज भर गिरता है, वहां से लेकर जैसलमेर तक जहां कुल पांच-आठ इंच वर्षा हो जाए तो भी आनंद बरस गया-ऐसा वातावरण बनाया। हिमपात से लेकर रेतीली आँधी में पानी का काम, तालाबों का काम करने वाले गजधरों का कितना बड़ा संगठन खड़ा किया गया होगा। कोई चार-पांच लाख गांवों में काम करने वाले उस संगठन का आकार इतना बड़ा था कि वह सचमुच निराकार हो गया। आज पानी का, पर्यावरण का काम करने वाली बड़ी-से-बड़ी संस्थाएं, उस संगठन की कल्पना तो करके देखें। लेकिन वॉटरशेड, जलागम क्षेत्र विकास का काम कर रही संस्थाएं सरकारें, उस निराकार संगठन को देख ही नहीं पातीं। उस निराकार से टकराती हैं, गिर भी पड़ती हैं, पर उसे देख, पहचान नहीं पातीं। उस संगठन के लिए तालाब एक वॉटर बॉडी नहीं था। वह उसकी रतन तलाई थी। झुमरी तलैया थी, जिसकी लहरों में वह अपने पुरखों की छवि देखता था। लेकिन आज की भाषा जलागम क्षेत्र विकास को मत्स्य पालन से होने वाली आमदनी में बदलती है।

इसी तरह अब नदियां यदि घर में बिजली का वल्ब न जला पाएं तो माना जाता है कि वे 'व्यर्थ में पानी समुद्र में बहा रही है।' बिजली जरूर बने, पर समुद्र में पानी बहना भी नदी का एक बड़ा काम है। इसे हमारी नई भाषा भूल रही है। जब समुद्रतटीय क्षेत्रों में भूजल बड़े पैमाने पर खारा होने लगेगा—तब हमें नदी की इस भूमिका का महत्त्व पता चलेगा।

लेकिन आज तो हमारी भाषा ही खारी हो चली है। जिन सरल, सजल शब्दों की धाराओं से वह मीठी बनती थी, उन धाराओं को बिलकुल नीरस, बनावटी, पर्यावरणीय, पारिस्थितिक जैसे शब्दों से बांधा जा रहा है। अपनी भाषा, अपने ही आंगन में विस्थापित हो रही है, वह अपने ही आंगन में पराई बन रही है। ❑

('साफ माथे का समाज' पुस्तक से साभार)

जीत श्रम की ही होगी

❑ अरुण तिवारी

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (मनरेगा) के रचनाकारों ने भी शायद न सोचा होगा कि यह अधिनियम कभी सामाजिक वर्ग क्रांति का सूत्रधार बनेगा। किसने सोचा था कि मनरेगा के आने से शहरों में मजदूरी बढ़ेगी और मनरेगा में मिली रोजगार की गारंटी, खेतों में मजदूर मिलने की गारंटी छीन लेगी? खासकर उन इलाकों का, जहां खेती के लिए अभी पानी का कोई संकट नहीं है। मनरेगा के भ्रष्टाचार ने अंतिम जन को भी भ्रष्ट बनाया है। यह कटु सच है। उससे भी बड़ा सकारात्मक सच यही है कि अन्तिम जन के पक्ष में सामाजिक-आर्थिक प्रभाव दिखाने शुरू कर दिये हैं।

खेतों में मजदूर नहीं मिलने का मतलब यह कि भारत के खेत अब बिना बोये-काटे रह जायेंगे। इसका मतलब यह है कि जो श्रमिक वर्ग अब तक मजदूर बनकर खेतों में काम करता था, वह अब हिस्सेदार व किरायेदार बनकर खेती करना चाहता है। इसमें वह सफल भी हो रहा है। क्योंकि भूमिधरों के पास मजदूरों का कोई विकल्प नहीं है; क्योंकि उसके परिवार का हर सदस्य खेत में काम करता है। दरअसल उसे किसी को मेहनताना नहीं देना होता। पट्टे की थोड़ी-बहुत जमीन भी उसके पास है। उसके पास जुताई के लिए बैल हैं। गोबर की खाद है। वह साग-भाजी जैसी नकदी फसल बोकर गांव के हाट में बेचने में शर्म नहीं करता। उसके सफल होने के कारण दो हैं—पहला, उसके लिए खेती घाटे का सौदा नहीं है। वह खेती में गंवाता नहीं, बल्कि कमाता है। दूसरा, उसके पास खेती के सिवा आय के और भी साधन हैं। वह अन्तोदय या बी.पी.एल. कार्डधारक है। गरीबी रेखा से नीचे की योजनाएं सिर्फ उसी के लिए हैं। दूसरों के खेतों में साल में दो बार कटिया-बिनिया से मिला अनाज उसके सालाना खर्च के लिए पर्याप्त होता है। वह खरीदकर नहीं खाता। वह कभी खाली नहीं बैठता। गांव में काम न हो, तो अब शहर में लोग उसका इंतजार करते बैठे हैं। जबकि वर्तमान भूमिधर उपरोक्त कई क्षमताएं नहीं रखते।

यदि ग्रामीण मेहनतकशों की आर्थिक सबलता का यह दौर जारी रहा, तो अगले एक दशक में भारत के गांवों के सामाजिक विन्यास में इसके दूरगामी परिणाम होंगे। अब खेती उसी की होगी, जो अपने हाथ से मेहनत करेगा। विकल्प के तौर पर खेती के आधुनिक औजार गांव में प्रवेश करेंगे। छोटी काश्तकारी पछाड़कर विदेशी तर्ज पर बड़ी फार्मिंग को आगे लाने की व्यावसायिक कोशिशें तेज होंगी। इससे पलायन का आंकड़ा फिलहाल कम नहीं होगा। पलायन करने वाला वर्ग बदलेगा। किसान जातियों का पलायन बढ़ेगा। नयी पीढ़ी की पढ़ाई पर जोर बढ़ेगा। श्रमिक वर्ग के पलायन में कमी आयेगी। श्रमिक वर्ग की समृद्धि बढ़ेगी। खेती पर उनका मालिकाना बढ़ेगा। किसान और श्रमिक जातियों के बीच वर्ग संघर्ष की संभावना से भी इनकार नहीं किया जा सकता। जीत श्रम की ही होगी। क्योंकि खेती में श्रम के विकल्प के रूप में आयीं मशीनों की भी एक सीमा है। आजादी के बाद भारत के गांवों में सामाजिक बदलाव का यह दूसरा बड़ा दौर है। तत्कालीन विवाद ने कालांतर में भूमिधर और आरक्षण की जद में आये कारीगरों के बीच दूरी बढ़ायी। इससे जजमानी के जरिए एक-दूसरे पर निर्भरता का सदियों पुराना ताना-बाना शिथिल हुआ।

उल्लेखनीय है कि भारतीय जाति व्यवस्था में नाई, लुहार, सुनार, बढ़ई, दर्जी, धोबी, कुम्हार, कंहार और चमार कभी भी भूमिधर नहीं थे। खेती या मजदूरी करना कभी इनका पेशा नहीं रहा। ये कारीगर के तौर पर समाज का हिस्सा रहे हैं। कारीगरों को उनकी कारीगरी के बदले भूमिधर खेती का हर उत्पाद देते थे। अनाज, फल, सब्जियां, भूसा, मट्ठा से लेकर पैसा व कपड़ा तक। यह पाना उनका हक था। यह बात और है कि इस हकदारी की पूर्ति न करने के अमानवीय कृत्य भी होते ही रहे हैं। बावजूद इसके इसे नकारा नहीं जा सकता कि एक-दूसरे पर आश्रित होने के कारण यह ताना-बाना लंबे समय तक समाज को एक प्रेम बंधन में गुंथे हुए था। नाई....महज नाई न होकर काका-दादा होता था। समाज का हर काम साझे के पहिए पर चलता था। जातिगत कारीगरी व्यवस्था भले ही किसी को विकास की नई अवधारणा के खिलाफ लगती हो। किन्तु सदियों से भारत के गांवों की स्वावलंबी व्यवस्था यही थी। इस व्यवस्था में बाजार और नकदी की जगह नहीं थी। बाजार और नकद के बगैर भी रोजमर्रा के काम रुकते नहीं थे। अब नकद और बाजार के बगैर गांव के काम भी चलते नहीं हैं। तब गांव अपनी ही दुनिया में मस्त था। अब गांव शहर की ओर ताकने लगा है।

बाजार के प्रवेश का सबसे बड़ा नुकसान यह हुआ कि गांव में ऐसे उत्पाद भी पहुंचे, पहले जिनके बिना गांव का जीवन चलता था। इनके आकर्षण ने गांवों में नकद कमाना जरूरी बनाया। परिणामस्वरूप गांवों से पलायन बढ़ा। दृष्टि व्यावसायिक हुई। जो गांव आवश्यकता से अधिक होने पर दूध-साग-भाजी आदि को गांव में बांटकर भी पुण्य कमाने का घमण्ड नहीं पालता था, वही गांव अब अपने बच्चे को भूखा रखकर भी दूध बेचकर पैसा कमाना चाहता है।

श्रमेव जयते! अंतिम जन को कई और गारंटी देने आयी सरकार की भिन्न योजनाएं जनजागृति के अभाव में पहले नाकामयाब→

महिलाएं ही बचा सकती हैं खेती

❑ बाबा मायाराम

परम्परागत कृषि का अधिकांश कार्य महिलाओं पर निर्भर है। वे खेत में बीज बोने से लेकर उनके संरक्षण—संवर्धन और भंडारण तक का काम बड़े जतन से करती हैं। पशुपालन से लेकर विविध तरह की हरी सब्जियां व फलदार वृक्ष लगाने व उनकी परवरिश का काममम करती हैं। जंगलों से फल-फूल, पत्ती के गुणों की पहचान करना व संग्रह करने में उनकी प्रमुख भूमिका रही है। वे जैव विविधता की जानकार और संरक्षक हैं। यानी वे प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण से लेकर खाद्य सुरक्षा का महत्त्वपूर्ण काम करती रही हैं।

लेकिन जबसे खेती में मशीनीकरण हुआ है तबसे महिलाओं की भूमिका सिमटती जा रही है। जबकि पूर्व में खेती में सिर्फ हल-बक्खर चलाने को छोड़कर महिलाएं सभी काम करती थीं। बल्कि छत्तीसगढ़ में तो कुछ जगह हल भी चलाती हैं। पारंपरिक खेती में बीजों का चयन, बीजोपचार, बुआई, निंदाई-गुड़ाई और कटाई-बंधाई तक की पूरी प्रक्रिया में महिलाएं जुड़ी थीं। खेतों में फसल की रखवाली, मवेशियों की परवरिश और गोबर खाद बनाने जैसे खेती से जुड़े काम उनके जिम्मे थे। हालांकि पहाड़ और जंगल पट्टी में अब भी महिलाएं खेती के काम में संलग्न हैं।

कड़कड़ाती ठंड हो या मूसलाधार बारिश या फिर चिलचिलाती तेज धूप महिलाएं सभी परिस्थितियों में खेती का काम करती रही हैं खेती के विकास में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण है। इसके अलावा, भोजन के लिए ईंधन जुटाना, खाना बनाना, ढोरों हेतु खेतों से घास लाना और फिर खेतों में काम करने जाना और फिर खेत से आकर घर का काम करना आदि उनकी जिम्मेदारी में शामिल है।

निंदाई-गुड़ाई के दौरान विजातीय पौधे और खरपतवार को फसल से अलग करना भी उनके काम का हिस्सा हुआ करता था। जब पौधों में फूल आ जाते हैं तब वे ऐसे विजातीय पौधों को आसानी से पहचानकर अलग कर देती थीं। निंदाई-गुड़ाई तीन-चार बार करनी पड़ती थी। खरपतवारनाशक के बढ़ते इस्तेमाल से उनकी भूमिका कम हो गयी।

बीजों के चयन में उनकी खास भूमिका होती थी। पहले खेतों में ही बीजों का चयन हो जाता था, इसमें देखा जाता था कि सबसे अच्छे स्वस्थ पौधे किस खेत में हैं। किस खेत के हिस्से में अच्छी बालियां हैं वहां किसी तरह के कमजोर और रोगी पौधे नहीं होने चाहिए। अगर ऐसे पौधे फसलों के बीच होते थे तो उन्हें हटा दिया जाता था। फिर अच्छी बालियों को छांटकर उन्हें साफ कर और सुखा लिया जाता था। इसके बाद बीजों का भंडारण किया जाता था। इन सब कामों में महिलाएं ही मदद करती थीं।

बीज भंडारण पारंपरिक खेती का एक अभिन्न हिस्सा है। अलग-अगल परिस्थिति और संस्कृति के अनुरूप किसानों ने बीजों की सुरक्षा के कई तरीके और विधियां विकसित की हैं। मक्का के बीज को घुन और खराब होने से बचाने के लिए चूल्हे के ऊपर छींके पर रखते हैं और सतपुडा अंचल में खुले में मक्के के भुट्टे को खंबे को छिलका समेत उल्टे लटकाकर रखते हैं। छिलका बरसाती का काम करता है और बारिश का पानी भी उन्हें खराब नहीं कर पाता।

मिट्टी की बड़ी कोठियों में, लकड़ी के पटाव पर, मिट्टी की हंडी में व ढोलकी में बीज रखे जाते थे। इसके अलावा, तूमा (लौकी की एक प्रजाति) बांस के खोल में बीजों का भंडारण किया जाता था। इसी प्रकार बीजों को धूप में सुखा कर, कोठी या भंडारण के स्थान पर धुंआ किया जाता था, जिससे पतंगे या घुन नहीं लगता। कीड़ों से बचाव के लिए लक़ड़ी या गोबर से जली राख या रेत भी बीजों में मिलाते हैं।

बीज के अभाव में बीजों का आदान-प्रदान हुआ करता था। कई बार महिलाएं अपने मायके से ससुराल बीज ले आती थीं। खासतौर से सब्जियों के बीज की अदला-बदली रिश्तेदार और परिवारजनों में होना आम बात थी। मायके में खेती के काम सीखकर आने वाली लड़कियों की ससुराल में इज्जत होती थी।

धान रोपाई का काम तो महिलाएं करती हैं। जब वे रंग-बिरंगे कपड़ों में गीत गाते हुए धान रोपाई करती हैं तो देखते ही बनता है। इनमें कई स्कूली लड़कियां भी होती हैं। वे स्कूल में भी पढ़ती हैं और खेतों में भी जमकर काम करती हैं। लड़कियां कृषि में ज्ञान और कौशल सीखती हैं। सतपुडा अंचल

→रहीं। दिलचस्प है कि जेब में मजूरी के पैसे की गारंटी से जगी जिज्ञासा और विश्वास ने उन योजनाओं की कामयाबी की उम्मीद भी बढ़ा दी है। अब निश्चित आय की गारंटी के बूते वे स्वरोजगार की योजनाओं में दिलचस्पी लेने लगे हैं। जागरूकता के नाम पर सामाजिक संगठनों के साथ हुए संपर्क ने अंतिम जन को बता दिया है कि रास्ते और भी रोने के सिवा....। लौटने लगी है सपने देखने की आजादी। ग्रामीण स्कूलों में बालिकाओं के प्रवेश की संख्या भी बढ़ने लगी है और उनके अव्वल आने की सुनहरी लकीरें भी। कभी भूमिधरों के शिकार रहे अंतिम जन के आगे अब निहोरे करते हाथ हैं। ''मजदूर नहीं मिलेगा'' का भय अब भूमिधरों को दंडवत मुद्रा में ले आया है। मालिकों को अब पता चला है श्रम की कीमत। हालांकि यह बदलाव अभी ऊंट के मुंह में जीरे जैसा ही है। ❑

में धान रोपाई को स्थानीय भाषा में लबोदा कहा जाता है।

पहले हर घर में बाड़ी हुआ करती थी, जो जैव विविधता का केन्द्र हुआ करती थी। इसमें कई तरह की हरी सब्जियां, मौसमी फल और मोटे अनाज लगाए जाते थे। जैसे भुट्टा, टमाटर, हरी मिर्च, अदरक, भिण्डी, सेमी (बल्लर), मक्का, ज्वार आदि होते थे। मुनगा, नींबू, बेर, अमरूद आदि बच्चों के पोषण के स्रोत होते थे। इसमें न अलग से पानी देने की जरूरत थी और न खाद की। जो पानी रोजाना इस्तेमाल होता था उससे ही बाड़ी की सब्जियों की सिंचाई हो जाती थी। लेकिन इनमें कई कारणों से कमी आ रही है। ये सभी काम महिलाएं ही करती थीं। न केवल भारत में बल्कि दुनिया के अन्य हिस्सों में महिलाएं खेती व जैव विविधता संरक्षण में संलग्न हैं।

एफ. ए. ओ. (फुड एंड एग्रीकल्चर ऑर्गनाइजेशन) की रिपोर्ट के मुताबिक महिलाएं, वैज्ञानिकों के मुकाबले पौध जैव विविधता, फिर वह उगाई जाती हो या प्राकृतिक हो की अधिक जानकार होती हैं। नाइजीरिया में महिलाएं अपने घरेलू बगीचे में 57 प्रकार की पौध प्रजातियां उगाती हैं। उप सहारा क्षेत्र में महिलाएं 120 विभिन्न पौधे उपजाती हैं। ग्वाटेमाला में दस से अधिक तरह के वृक्ष और फसलें मिल जाती हैं। इसी प्रकार सतपुड़ा अंचल में भी बाडियों में कई तरह की सब्जियां और फलदार वृक्ष महिलाएं लगाती हैं।

जंगल क्षेत्र में रहने वाले लोगों की आजीविका जंगल पर ही निर्भर है। खेत और जंगल से उन्हें काफी अमौद्रिक चीजें मिलती हैं, जो पोषण के लिए निःशुल्क और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। सभी चीजें उन्हें अपने परिवेश और आसपास से मिल जाती हैं। जैसे बेर, जामुन, अचार, आंवला, महुआ, मकोई, सीताफल, आम, शहद और कई तरह के फल-फूल, जंगली कंद और पत्ता भाजी सहज ही उपलब्ध हो जाते हैं। यानी खेती एक तरह की जीवन पद्धति है जिसमें जैव विविधता का संरक्षण होता है। मिट्टी, पानी और पर्यावरण का संरक्षण होता है और इन सबमें महिलाओं की भूमिका अहम है।

पिपरिया के पास डोकरीखेड़ा की महिला किसान कमला बाई कहती हैं कि हमने अपने मायके परासिया में खेती का काम अपने मां-बाप से सीखा था। अब ससुराल में वही कर रही हैं। उन्होंने कहा कि पहले हम मिलवां फसलें बोती थीं लेकिन अब उसकी जगह पर एक ही फसल बोने लगे हैं। खेती का अधिकांश काम महिलाएं करती हैं।

देशी बीजों के संरक्षण में लगे बाबूलाल दाहिया कहते हैं कि महिला और पुरुष दोनों खेती के अंग थे। एक-दूसरे के पूरक थे। अगर पुरुष खेत में हल चलाता था तो महिलाएं घर से कलेऊ (नाश्ता) लेकर जाती थीं। खेत की जुताई पुरुष करते हैं तो महिलाएं गाय के लिए घास छीलती हैं। अगर फसल आने पर खेत की पूजा होती है तो महिलाएं वहां कलश लेकर खड़ी रहती हैं।

हाल ही में विदेश से अध्ययन कर लौटे सुरेश कुमार साहू कहते हैं कि आमतौर पर सरकारी आंकड़े खेती में महिलाओं के श्रम बल को कम करके बताते हैं लेकिन वे खेती का अधिकांश काम करती हैं। हमारे देश में गांवों से शहरों की ओर पलायन की जनधारा बह रही है। पुरुष गांव छोड़कर शहरों में काम की तलाश में चले जाते हैं तो खेती के पूरे काम का बोझ महिलाओं पर आ जाता है। यद्यपि वे पहले से भी खेती का काम कर रही होती हैं।

कुल मिलाकर, यह कहा जा सकता है कि कृषि में महिलाओं की भूमिका महत्त्वपूर्ण है। खासतौर पर जंगल और पहाड़ में खेती उन पर ही निर्भर है। नई रासायनिक और आधुनिक खेती में जो अभूतपूर्व संकट आया है उससे जंगल व परंपरागत खेती भी प्रभावित हो रही है। ऐसे में मिट्टी-पानी और देशी बीजों की हल-बैल की परंपरागत खेती को बचाना जरूरी है और ऐसी परंपरागत खेती को वे ही बचा सकती हैं क्योंकि उनके पास बरसों से संचित परंपरागत ज्ञान, कौशल व अनुभव है। ❑

नये अध्यक्ष का निर्वाचन

पानीपत जिला सर्वोदय मंडल के नये अध्यक्ष का निर्वाचन जिला सर्वोदय मंडल, पानीपत की मासिक बैठक 5.9.2013 को ग्राम बिलासपुर, जिला पानीपत की हरिजन चौपाल में जिला के अध्यक्ष श्री आजाद सिंह की अध्यक्षता एवं जिले के लोक-सेवकों, सर्वोदय मित्रों की उपस्थिति में सम्पन्न हुई।

सभा प्रारम्भ होने से पहले प्रदेश अध्यक्ष श्री महावीर त्यागी ने सभा को सम्बोधित करते हुए संत विनोबा भावे के जीवन पर प्रकाश डाला। श्री आजाद सिंह ने मास्टर जयभगवान शर्मा का नाम अध्यक्ष हेतु प्रस्तुत किया। उपस्थित लोकसेवकों और सर्वोदय मित्रों ने सर्वसम्मति से उनके नाम पर सहमति प्रकट की। श्री आजाद सिंह और लोकसेवकों द्वारा उन्हें माला पहनाकर स्वागत किया गया। जयभगवान शर्मा ने सबको धन्यवाद दिया एवं जिला सर्वोदय मंडल को और अधिक सक्रिय करने की बात कही। उन्होंने अपनी टीम में डॉ. इन्दर सिंह को जिला का मंत्री और श्री आजाद सिंह को जिला प्रतिनिधि घोषित किया।

–महावीर त्यागी

पुस्तक समीक्षा

परमाणु ऊर्जा की असलियत

❑ कुमार सुंदरम

इस साल पोखरण अणु-विस्फोट के पंद्रह साल पूरे हुए। पोखरण से लेकर 2008 में अमेरिका के साथ परमाणु-करार और उसके बाद देश के विभिन्न कोनों में परमाणु संयंत्र परियोजनाओं के खिलाफ जनांदोलनों तक, भारत की राजनीति, विदेश नीति, ऊर्जा नीति और विकास नीति काफी हद तक परमाणु मसलों के इर्द-गिर्द घूमती रही है। लेकिन इस विषय पर हिंदी में कोई गंभीर स्वतंत्र लेखन नहीं हुआ है। समाजकर्मी संदीप पांडेय ने हिंदी में परमाणु विषय पर लिख कर अपने सरोकारों और इंजीनियरी के अपने मूल पेशे दोनों के प्रति ईमानदारी बरती है।

'नाभिकीय मुक्त दुनिया की ओर' नामक यह किताब परमाणु मुद्दे की वैज्ञानिक-तकनीकी जानकारी, भारत में इसकी स्थिति और वांछनीयता तथा इस विभीषिका के खिलाफ चल रहे जनांदोलनों के बारे में तीन स्वतंत्र अध्यायों का संकलन है। पहले अध्याय में यूरेनियम खनन से लेकर नाभिकीय ईंधन निर्माण, परमाणु बिजलीघरों की कार्यप्रणाली, नाभिकीय कचरे के पुनर्संसाधन और शस्त्र-निर्माण तक समूचे परमाणु ईंधन-चक्र की जानकारी सरल भाषा में दी गई है। भारत में ये संयंत्र कब, कैसे, कहां बने और इनके सरकारी दावों की हकीकत क्या है, इसका जिक्र भी इस अध्याय में है। रावतभाटा के मौजूदा रिएक्टरों और जादूगोड़ा की यूरेनियम खदान के समीप डॉ. सुरेंद्र गाडेकर तथा डॉ. संघमित्रा गाडेकर द्वारा किए गए स्वास्थ्य सर्वेक्षणों में कैंसर और जन्मजात अपंगता जैसे रोगों की बहुतायत का भी विश्लेषण है।

दूसरा अध्याय प्रश्नोत्तरी शैली में है जिसमें परमाणु से जुड़ी आम भ्रांतियों का जवाब मिलता है।

नाभिकीय विकिरण सुरक्षित है और परमाणु बम से देश की सुरक्षा होती है जैसे सवालों के साथ-साथ देश में विकास और राष्ट्र-निर्माण के उस ढांचे का भी खुलासा है जिसके तहत अणु-ऊर्जा से केंद्रीकृत बिजली-उत्पादन और अणु बमों की होड़ स्वाभाविक हो जाती है। फुकुशिमा के बाद पूरी दुनिया में परमाणु ऊर्जा के कारखाने बंद किए जा रहे जबकि भारत में विदेशी आपूर्तिकर्ताओं को दिए वादे पूरे करने के लिए इन कारखानों को किसानों, मछुआरों और स्थानीय समुदायों पर थोपा जा रहा है और इसके लिए परमाणु ऊर्जा से जुड़े खतरे इसकी कीमत और स्वास्थ्य तथा पर्यावरणीय प्रभावों को अनदेखा किया जा रहा है।

किताब के तीसरे अध्याय में कुडनकुलम, जैतापुरा, मीठी विर्दी, चुटका, गोरखपुर, कोवाडा और मेघालय जैसी प्रस्तावित परियोजनाओं एवं जादूगोड़ा, रावतभाटा, काकरापार, कैगा और कलपक्कम जैसी मौजूदा परियोजनाओं के खिलाफ स्थानीय जनांदोलनों का विश्लेषण है। स्थानीय मुद्दे और संघर्ष का इतिहास तथा उनमें शामिल जनसंगठनों की चर्चा है।

पुस्तक में 14 परिशिष्ट और तालिकाएं भी शामिल हैं जिनमें खास बिन्दुओं पर जानकारी और विश्लेषण दिए गए हैं। हर अध्याय में लंबी संदर्भ सूची है जिसका लाभ इच्छुक पाठक आगे की जानकारी के लिए उठा सकते हैं। भारत के नौसेनाध्यक्ष रहे एडमिरल रामदास और पाकिस्तान के प्रख्यात शांतिवादी वैज्ञानिक परवेज हूडभॉय ने इस पुस्तिका के लिए प्रस्तावना और आमुख लिखे हैं।

परमाणु बम और ऊर्जा-संयंत्र वस्तुतः समाज और प्रकृति की हिंसक घेरेबंदी पर आधारित आधुनिक सभ्यता और राष्ट्र-राज्य की अंधी दौड़ का नतीजा है। वैज्ञानिकों के आभामंडल की परतें उतार कर देखें तो अर्थशास्त्र की तरह ही परमाणु नीति भी कई ऐसी अवधारणाओं पर आधारित है जिनका रिश्ता किसी वस्तुनिष्ठ विज्ञान से नहीं बल्कि हमारी सामाजिक और सांस्कृतिक बुनावट से है। परमाणु बम के बिना दुनिया ज्यादा सुरक्षित होगी और अणु-ऊर्जा के टिकाऊ, पर्यावरण हितैषी एवं जनकेंद्रीत विकल्प संभव हैं। लेकिन सामाजिक सत्ता की सीढ़ियों के ऊपर खड़े नीति-विशेषज्ञ इस बात को देख-समझ नहीं पाते।

इस किताब के तीनों अध्याय बिलकुल अलग हैं और उन्हें स्वतंत्र रूप से पढ़ा जा सकता है। लेकिन अच्छा होता अगर लेखक ने इन तीनों अध्यायों के बीच अंतःसूत्रता बनाई होती। पुस्तिका की भाषा वैज्ञानिक शब्दावली के सटीक अनुवाद की कोशिश में कई जगह बहुत यांत्रिक सी हो गई है।

जो भी हो, यह छोटी सी किताब परमाणु मसले पर काम कर रहे कार्यकर्ताओं और सामान्य पाठकवर्ग दोनों के लिए बहुत उपयोगी है और हिन्दी में साहित्येतर विषयों पर गंभीर लेकिन सरल लेखन की कमी भी कुछ पूरी करती है। परमाणु मुद्दे, खासकर अणु बिजली से जुड़ी दिक्कतों को देश में ऊर्जा और विकास के व्यापक सवालों से काटकर नहीं समझा जा सकता है जिसके लिए इसी तरह के और गंभीर लेकिन सहज लेखन की जरूरत हिंदी समाज को है। ❑

खादी-मिशन की बैठक

खादी-मिशन की सभा 8-9 सितंबर, 2013 को खादी की उद्‌गमस्थली—गांधीजी के ऐतिहासिक साबरमती आश्रम, अहमदाबाद में संयोजक श्री बालविजय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई।

सभा में सर्वसम्मति से पारित प्रस्ताव : राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता के लिए जो संघर्ष किया, वह केवल सत्ता परिवर्तन तक सीमित नहीं था। आर्थिक और राजनैतिक विकेन्द्रित व्यवस्था की स्थापना के साथ मानवता की शोषण-मुक्ति के लिए भी वह संघर्ष था। गांधीजी ने पूंजीवाद और साम्यवाद से विलग तीसरा विकल्प ग्रामस्वराज्य के रूप में दुनिया के सामने प्रस्तुत किया। यह उनकी दुनिया की देन थी। इसी परिकल्पना को साकार करने के लिए उन्होंने खादी-ग्रामोद्योग का कार्यक्रम देश में प्रारम्भ किया था। उसके लिए संस्थाओं का निर्माण हुआ, प्रयत्नों के बल पर सेवा-कार्य व्यापक बनता गया। इस तरह भारतीय स्वतंत्रता संग्राम सहित उसकी भूमिका-निर्माण तथा स्वतंत्रता संघर्ष को व्यापक बनाने में खादी ग्रामोद्योगी संस्थाओं का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन संस्थाओं के कार्य में सहयोग, मदद, विकास व विस्तार करने की दृष्टि से भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने 1956 में ''खादी ग्रामोद्योग आयोग'' की स्थापना की थी। जिसके कारण ग्रामीण रोजगार को गति प्रदान करने में बल मिला और कार्य में उत्तरोत्तर विकास भी हुआ।

समयोपरांत, खादी ग्रामोद्योग आयोग के अधिनियम में बार-बार परिवर्तन कर उसके स्वरूप में बुनियाद परिवर्तन कर दिये गये और उसे सरकारी तंत्रप्रधान संस्थान में परिवर्तित कर दिया गया। आयोग की मूल भावना का प्राण ही निकाल दिया गया। ग्रामोद्योग की व्याख्या बदलकर उन्हें औद्योगिक प्रतिष्ठानों का स्वरूप दे दिया गया। ग्रामीण कारीगरों पर यह सीधा प्रहार था। दिये गये आश्वासनों का खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा ईमानदारी और प्रमाणिकता से परिपालन न होने के कारण संस्थाएं पूरी तरह कर्ज-जाल में फँसती गयीं। इसके अलावा नित नये-नये अहितकारी नीति-नियम उसके व्यवहारिक गुण-दोषों पर विचार किये बिना संस्थाओं पर लादे जा रहे हैं। निरंकुशता और दमन इतना बढ़ा है कि अधिकांश परिपत्र संस्थाओं को मजबूती प्रदान करने के बजाय उनका अस्तित्व ही संकटग्रस्त करने के लिए जारी किये जा रहे हैं। इस तरह संस्थाओं को अपनी संकल्पित सेवा करने में परेशानियां पैदा की जा रही हैं। ऐसी परिस्थिति में आयोग के अधीन रहकर विरासत में प्राप्त हुआ वंचितों का सेवा-कार्य करना संस्थाओं के लिए असम्भव हो गया है।

केन्द्रीय सरकार की नीतियों को दृष्टिगत रखते हुए खादी और ग्रामोद्योग आयोग, विचारनिष्ठ संस्थाओं के माध्यम से महात्मा गांधी-प्रणित खादी के बदले अधिकाधिक नफा कमाने वाले देशी-विदेशी पूंजीपतियों के सहयोग से खादी के नाम पर बाजारू कपड़ा बेचने का प्रयास करने जा रहा है। इसके अनुसार आयोग 2 अक्टूबर, 2013 से 'खादी मार्का' के नाम से नई नीति लागू कर रहा है। खादी मिशन इसका विरोध करता है और इस पद्धति को खादी संस्थाएं भी मानने के लिए बाध्य नहीं हैं। क्योंकि संस्थाएं न नफा न नुकसान पद्धति के आधार पर सेवा मात्र के लिए नैतिक और वैधानिक रूप से प्रतिबद्ध हैं। इसलिए, खादी मार्का नामक इस नयी नीति से संस्थाएं और गहरे संकट में फँस सकती हैं। जिसे 'लिवरी ऑफ फ्रीडम' कहकर गौरवान्वित किया गया था, उस खादी का यह स्पष्ट अनादर, अपमान और अवहेलना है और उन बुनियादी सिद्धांतों के विरुद्ध है, जिनकी स्थापना के लिए खादी-मिशन प्रतिबद्ध है। जिस चरखे ने आजादी की आवाज पैदा करने की हुंकार भरी थी उस पर अब गुलामी की बेड़ियां डालकर उसे जकड़ने का प्रयास किया जा रहा है। इन हालातों व साजिशों के कारण खादी कहीं पूंजीवादी व्यवस्था की गुलाम या उसकी बलि न बना दी जाये।

उच्चाधिकार समिति—जिसकी अध्यक्षता तत्कालीन प्रधानमंत्री ने की थी और जिसके सदस्य वर्तमान प्रधानमंत्री एवं कार्यकारी अध्यक्ष वर्तमान रक्षामंत्री थे, के निर्णयों के विरुद्ध तथा रामकृष्णया कमिटी की संस्तुतियों की अवहेलना करते हुए खादी ग्रामोद्योग आयोग एक विकासशील संगठन न होकर अत्यधिक निरंकुश व नियंत्रणकारी संगठन बन गया है। कच्चे माल की खरीद से लेकर विपणन तक की सारी प्रक्रियाओं का निर्णय वह करता है और नुकसान की सारी जिम्मेदारी संस्थाओं पर डाल देता है। अपनी दमनात्मक व्यवस्था में ही संस्थाओं को चलने के लिए आयोग मजबूर कर रहा है। स्वावलंबन, ग्रामीण अर्थरचना सुदृढ़ीकरण, स्वायत्त, समता और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर चुकी खादी आज खुद गलत नीतियों के कारण उपेक्षा की शिकार हो गयी है। ऐसे दमघोंटू वातावरण में संस्थाओं को सेवाकार्य करना दूभर हो गया है।

उपरोक्त परिस्थितियों एवं खादी ग्रामोद्योग आयोग से वर्षों तक रिबेट, एमडीए, इन्टरेस्ट सबसिडी की रकमों के न मिलने, राज्य खादी ग्रामोद्योग बोर्डों द्वारा आश्वासनों के विपरीत रिबेट की रकमों का भुगतान रोके जाने तथा आयोग के भवनों द्वारा संस्थाओं की देय रकमों का समयानुसार भुगतान न किये जाने तथा बैंक ऋण से तीन गुना ब्याज की रकमों को

दिये जाने के कारण संस्थाओं की तरल पूंजी लगभग समाप्त हो गयी है। संस्थाएं बंद होने की कगार पर पहुंच गयी हैं। जिसके कारण आधे से अधिक कारीगर बेरोजगार हो गये हैं और शेष बेरोजगार होने के कगार पर हैं। बैंकों को इन्टरेस्ट सबसिडी की रकम का भुगतान प्रतिमाह करना आवश्यक है, परन्तु खादी और ग्रामोद्योग आयोग द्वारा अपने हिस्से की रकम का 5-6 माह बाद भुगतान किया जाता है। जिसके कारण संस्थाओं के बैंक खाते एन.पी.ए. हो रहे हैं और बैंकों द्वारा संस्थाओं की सम्पत्ति औने-पौने दामों में बोर्डों और व्यक्तियों को विक्रय किया जा रहा है। पोलीवस्त्र कार्यक्रम की आर्थिक सहायता बन्द कर दी गयी है। जिससे संस्थाओं द्वारा इस कार्यक्रम के अंतर्गत बैंकों से जो राशि ली गयी थी, इस रकम को जमा करवाने में संस्थाएं असमर्थ हैं। उक्त परिस्थिति में खादी संस्थाओं के पास इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं बचा है कि उन्हें ऋण भार से मुक्ति मिले, जो कि वास्तव में उनके पास नहीं है तथा केवल किताबों में ही उल्लिखित है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग की किताबों के अनुसार खादी ग्रामोद्योगी संस्थाओं का राज्य खादी ग्रामोद्योग पर 2408.02 करोड़ रुपये का ऋण है। जिसमें से संस्थाओं के पास केवल 1076.96 करोड़ रुपये का ऋण बाकी है और इस सारे ऋण को माफ करने के लिए खादी ग्रामोद्योग आयोग द्वारा केन्द्रीय सरकार को अपनी संस्तुति भी भेज दी गयी है। केन्द्रीय सरकार द्वारा केवल सी.बी.सी. का मामला ही अभी तक विचाराधीन माना गया है और खादी संस्थाओं को बाकी ऋणों से मुक्त करना केन्द्रीय सरकार ने फिलवक्त तक मान्य नहीं किया है।

खादी मिशन, गांधी-विनोबा के सपनों को साकार करने तथा खादी की ऐतिहासिक विरासत को कायम रखने एवं खादी संस्थाओं के सिद्धांत, स्वायत्तता और स्वतंत्रता की सुरक्षितता को अक्षुण्ण बनाये रखने एवं कायम करने के लिए प्रतिबद्ध है। इसलिए भारत सरकार से अनुरोध है कि देशसेवा में कार्यरत राष्ट्रीय धरोहर खादी ग्रामोद्योग संस्थाओं को 2 अक्टूबर, 2013 तक पूर्णतया ऋण भार से मुक्त किया जाये ताकि संस्थाएं महात्मा गांधी द्वारा निर्देशित सिद्धांतों पर अपना सेवा-कार्य निर्विघ्नता से जारी रख सकें। अगर यह नहीं होता है तो संस्थाएं अहिंसक सत्याग्रह के तौर पर विश्व अहिंसा दिवस 2 अक्टूबर, 2013 से असहयोग का मार्ग अपनाने पर विवश होंगी तथा उसके बाद खादी और ग्रामोद्योग आयोग का कोई भी आदेश-निर्देश पालन करने के लिए संस्थाएं बाध्य नहीं होंगी।

यदि उक्त अवधि तक भारत सरकार महात्मा गांधी प्रणित संस्थाओं को ऋण भार से मुक्त नहीं करती है तो पं. जवाहरलाल नेहरू के जन्मदिन 14 नवंबर, 2013 से संस्थाएं कार्यकर्ताओं के त्यागपूर्ण मेहनत से निर्मित और कार्य के लिए दान से प्राप्त सम्पत्ति में से अतिरिक्त एवं यथोचित सम्पत्ति का विक्रय कर जो आयोग द्वारा देय रकम है, उस रकम को कम करके आयोग का ऋण और बैंक का ऋण वापस करना प्रारम्भ कर देंगी। इस बारे में आयोग के ऋण नियम 9 के अंतर्गत आयोग की ऋण सुरक्षा के लिए केवल मात्र इक्युटेबल मोर्टगेज एवं हाईपाथिकेशन डीड की रकम के योग के बराबर ही सम्पत्ति गिरवी रखने का प्रावधान है। इसके अनुसार ही खादी और ग्रामोद्योग आयोग ने इस नियम का संदर्भ देते हुए परिपत्र क्रमांक DKC/MDA Policy/2011-12/435 दिनांक 17 अप्रैल, 2012 जारी किया है और राज्य कार्यालयों को आवश्यक कार्रवाई करने का निर्देश दिया है। इसके बावजूद भी ऋण से भी कई गुना अधिक सम्पत्ति जो कि संस्थाओं के पास है, उसे इक्युटेबल मोर्टगेज करने के लिए आयोग संस्थाओं को नियमविरुद्ध बाध्य कर रहा है। इस प्रकार के कानून विरोधी कार्य खादी मिशन को किसी भी परिस्थिति में मान्य नहीं है।

संस्थाएं ऋण वापस करने के उपरांत बची हुई राशि से देश के लिए स्थायी रूप से कल्याणदायिनी और विपत्ति के समय जीवनदायिनी अपनी सर्वसमावेशक प्रवृत्तियां स्वायत्तता और स्वतंत्रता से जारी रखेंगी। महात्मा गांधी के निर्देश के अनुसार निःस्वार्थ भाव से खादी ग्रामोद्योग का सेवा-कार्य करने एवं अपने कार्य को बढ़ाकर रोजगार में वृद्धि तथा ग्रामीण क्षेत्र के वंचितों के सर्वांगीण विकास करने हेतु संस्थाएं वचनबद्ध हैं।

अतः खादी मिशन की यह सभा निर्णय करती है कि महात्मा गांधी प्रणित खादी ग्रामोद्योग कार्यक्रमों का विकास, ग्रामीण कत्तिन-बुनकर-कार्यकर्ता-कामगारों के रोजगार व हितों की रक्षा एवं संस्थाओं को सक्षम बनाने की दृष्टि से खादी संस्थाओं को पूर्ववत् स्वायत्त और स्वतंत्र होना अनिवार्य है।

–बालविजय, संयोजक

आवश्यक सूचना

'सर्वोदय जगत'

के सभी सुहृद पाठकों, ग्राहकों, लेखकों व शुभ-चिन्तकों को सूचित करना है कि सर्व सेवा संघ-प्रकाशन की वेबसाइट

www.ssprakashan.com

पर 'सर्वोदय जगत' का प्रत्येक अंक उपलब्ध कराया जा रहा है।

कृपया वेबसाइट देखें। –सं.

लोकतंत्र का अगला कदम : 'लोक उम्मीदवार'

लोकतंत्र की परिभाषा कहती है कि लोकतंत्र लोगों द्वारा चलना चाहिए। लेकिन वास्तव में कहीं भी लोगों की प्रत्यक्ष भूमिका देखने को नहीं मिलती। आज के लोकतंत्र को क्या हम लोकतंत्र कहेंगे? इस तरह के सवाल हमारे सामने उपस्थित होते हैं। समझ में यह आता है कि आजादी के 66 साल के बाद भी हम लोकतंत्र को पूरी तरह स्थापित नहीं कर पाये। लोकतंत्र के केन्द्र में कोई है तो वह लोक है, और आज उसकी कोई भूमिका नहीं रही है। वह निष्क्रिय ही रहे ऐसी साजिश रची गयी है। लोकतंत्र में जो प्रतिनिधि चुनकर आते हैं क्या वह लोक प्रतिनिधि हैं? क्या इसे हम सही कह सकते हैं? प्रतिनिधि खड़ा करने में लोगों की कोई भूमिका नहीं होती। आज के प्रतिनिधि किसी-न-किसी पार्टी के होते हैं या निर्दलीय होते हैं, वे लोगों की राय लेकर खड़े नहीं होते हैं। इसलिए लोगों के वोट खरीदने की उन्हें आवश्यकता पड़ती है। लोग भी अपने वोट अज्ञानतावश, मजबूरी या धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर, कपड़े, कम्बल, शराब, पैसों के लिए बेचते हैं। उनके पास इसका कोई विकल्प नहीं होता इसलिए इस बार इस पार्टी को तो अगली बार उस पार्टी को तो कभी निर्दलीय को वोट देते हैं। आजादी के बाद लोकतंत्र लाने के लिए भाषा, प्रांत, धर्म भूलकर लोग साथ में आये। लेकिन अब हम देखते हैं कि धर्म, भाषा, प्रांत, जाति के आधार से ही सत्ता प्राप्त करने की कोशिश चल रही है और यह स्थिति कायम बनी रहे यही निरंतर कोशिश वे करते हैं। अब जाति, धर्म के साथ-साथ पार्टियों में भी गांव बंट गये हैं। लोकतंत्र तो लोगों को साथ लाने की प्रक्रिया है। लेकिन हमने इससे उलटी दिशा अपनायी है। हम सिर्फ चुनाव में अपने वोट का इस्तेमाल करते हैं। क्या हम सही इस्तेमाल कर रहे हैं? इसके बारे में हम सचेत नहीं हैं। हमारे वोट से ही सरकार बनती है और हमारे नोट से सरकार चलती है, यह बात शायद हम भूल गये हैं। जब अपना वोट बक्से में हम डालते हैं तो किस्मत अपनी खुलनी चाहिए लेकिन देखते हैं कि किस्मत उनकी खुलती है और वे दिल्ली पहुंच जाते हैं। बाद में उनसे मिलना भी मुश्किल हो जाता है। हमारे पास उन्हें दिल्ली भेजने का रास्ता तो है, लेकिन वापस बुलाने का रास्ता नहीं। इसलिए यह लोकतंत्र नहीं तंत्रलोक बन गया है। लोगों के ऊपर तंत्र हॉवी हो गया है। लोकतंत्र में तंत्र की डोर लोगों के हाथ रहे, यह बात हम लोगों को समझा रहे हैं। जिसे गांधीजी, विनोबाजी और जयप्रकाशजी ने हमें पहले ही समझाया है। इसे ही हम लोकतंत्र का अगला कदम कहते हैं और लोक उम्मीदवार प्रक्रिया द्वारा यह साकार होगा, यह हम मानते हैं।

मध्य प्रदेश में छत्तरपुर जिले के बिजावर विधानसभा क्षेत्र में पिछले छह माह से हम लोक उम्मीदवार के प्रयोग की तैयारी कर रहे हैं। अब तक हमने राष्ट्रीय स्तर पर चार अभियान पूरे किये हैं। पहले तीन अभियान में हमने लोकउम्मीदवार की पूरी संकल्पना लोगों को समझायी है। चौथे अभियान में गांव की ग्रामसभा आयोजित कर ग्राम समिति बनायी गयी, जिसमें सभी जाति-वर्ग के प्रतिनिधियों को गांव की आम राय से चुना गया। इसी ग्राम समिति से एक ग्राम प्रतिनिधि चुना गया। चौथे दौर में कुल 46 गांव के ग्राम प्रतिनिधि चुने गये। अगले दौरे में सभी गांवों के ग्राम प्रतिनिधियों को चयन की प्रक्रिया पूरी होगी और आगे यह सभी ग्राम प्रतिनिधि मिलाकर आम राय से अपने उम्मीदवार की घोषणा करेंगे और वह होगा 'लोक उम्मीदवार'। सभी प्रतिनिधि अपने-अपने गांव में बतायेंगे कि हमें अपने लोक उम्मीदवार को वोट देना है। इस प्रक्रिया से चुनाव में होने वाले कई तरह के खर्च कम होंगे। विधानसभा क्षेत्र के सभी गांव के प्रतिनिधि मिलकर अपने क्षेत्र में क्या काम करने हैं, इसका निर्देश लोक उम्मीदवार को देंगे। जब उम्मीदवार ग्राम प्रतिनिधि मंडल की बात नहीं मानेंगे तो उन्हें सबकी आम सहमति से वापस बुलाया जायेगा। इसका इकरारनामा न्यायालय के कोर्ट पेपर पर चुनकर आने के पहले किया जायेगा। ऐसा कोई कानून अभी नहीं बना है। लेकिन यह लोगों के नैतिक विश्वास के आधार पर कदम उठाया जायेगा। साथ में प्रतिनिधि को वापस बुलाने की मांग चल रही है, उसे बल मिलेगा।

लोकतंत्र स्थापित होने से पहले लोगों के मन में ऐसे ही कई सवाल थे कि लोग कैसे साथ में आकर वोट डालेंगे। सरकार कैसी बनेगी लेकिन यह सब हुआ। लोगों ने चुनाव में हिस्सा लिया। सरकार बनी और चलने लगी लेकिन उसकी कमान लोगों के अपने हाथों में नहीं रखी इसलिए लोकतंत्र के अगले कदम के बारे में सोचना पड़ा और इसे धरातल पर लाने की कोशिश भी करनी पड़ रही है। राष्ट्रीय युवा संगठन अपनी पूरी शक्ति के साथ इस प्रयोग को सफल बनाने में लगा है। देशभर से साथी लगातार इस क्षेत्र में पहुंच रहे हैं। जिनतक हमारी यह बात पहुंच रही है उनसे सभी तरह के सहयोग की अपेक्षा है।

–प्रशांत नागोसे,
राष्ट्रीय युवा संगठन

गतिविधियां एवं समाचार

मुसलमानों ने जमीन दान दी :

प्रखण्ड, कुशेश्वर स्थान, बेरिचौक पर बहुत पहले से स्थापित दुर्गा मंदिर की जमीन के संदर्भ में जिला ग्रामस्वराज्य अभियान समिति, दरभंगा, बिहार ने उपजे विवाद के निबटारे हेतु हृदय नारायण चौधरी की अध्यक्षता में दोनों समुदाय की बैठक कर आपसी समझौता कराकर मंदिर के पीछे की जमीन में से मो. शमीम सहित ने 5 फीट जमीन मंदिर को दान कर आपसी भाईचारे का मिसाल कायम किया। दोनों पक्षों के लोगों ने सौहार्दपूर्ण माहौल में एकजुट रहने का संकल्प लिया। दोनों पक्षों ने यह भी निर्णय लिया कि दुर्गापूजा समिति में दो सदस्य मुस्लिम समुदाय के रहेंगे। **–हृदय नारायण**

जयप्रभा मेमोरियल ट्रस्ट :

लोकनायक जयप्रकाश नारायण की जन्मस्थली, लाला टोला, सिताबदियारा में जयप्रभा मेमोरियल ट्रस्ट हेतु जे. पी. के चचेरे भाई श्री कमला चरण वर्मा, ओमप्रकाश गिरि, अध्यक्ष तथा आलोक कुमार सिंह, सचिव का प्रयास सफल हुआ है।

बिहार सरकार द्वारा पांच एकड़ जमीन आवंटन हेतु सारण प्रमंडल के भूअर्जन अधिकारी को निर्देश दिया गया है कि भूमि देने वाले किसानों को भुगतान हेतु एक करोड़ छिहत्तर लाख बीस हजार रुपये सारण भूअर्जन कार्यालय में बिहार सरकार ने भेज दिया है। **–ओमप्रकाश गिरि**

विनोबा जयंती का आयोजन :

जयपुर स्थित विनोबा ज्ञान मंदिर में 11 सितंबर को विनोबा जयंती का आयोजन किया गया। विनोबा ज्ञान मंदिर के मंत्री डॉ. अवध प्रसाद ने बताया कि इस निमित्त ग्रामीण क्षेत्र के 9 माध्यमिक विद्यालयों में गांधी-विनोबा जीवन और विचार पर व्याख्यान प्रतियोगिता करायी गयी और विजेता छात्र-छात्राओं को पुरस्कृत किया गया। इस अवसर पर विनोबा ज्ञान मंदिर में सूत्रयज्ञ, विष्णुसहस्त्र नाम का पाठ एवं सर्वधर्म प्रार्थना हुआ।

श्री शांतिस्वरूप गुप्ता के भजन के साथ कार्यक्रम समाप्त हुआ। **–डॉ. अमित कुमार**

× × ×

11 सितंबर, 2013 को समालखा शहर में विनोबा जयंती के अवसर पर प्रभातफेरी का आयोजन किया गया।

प्रभातफेरी में प्रदेश सर्वोदय मंडल, जिला सर्वोदय मंडल, श्रीकृष्ण गोरक्षा समिति, लोकसेवा आश्रम, भारत माता विद्यामंदिर के बच्चों, अध्यापकगण, आर्य समाज के प्रमुख व्यक्ति, शहर के गणमान्य व्यक्तियों ने कार्यक्रम आयोजन में हरसम्भव सहयोग दिया। विभिन्न नारों के उद्घोष के साथ जुलूस रेलवे स्टेशन तक गया।

रेलवे स्टेशन के बाहर एक विशाल सभा का आयोजन हुआ, जिसमें विनोबाजी के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डाला गया। भूदान आंदोलन, दस्यू आत्म समर्पण एवं गोरक्षा पर विशेष प्रकाश डाला गया। प्रभातफेरी के माध्यम से हरियाणा सरकार से मांग की गयी कि संत गोपालदास के प्राण की रक्षा करे और गो-चारण भूमि मुक्त कराये। **–महावीर त्यागी**

× × ×

अहमदाबाद जिला सर्वोदय मंडल और पंकज केलवणी मंडल के संयुक्त तत्त्वावधान में 11 सितंबर, 2013 को दसकोशी विद्यामंडल हॉल, पंकज विद्यालय परिसर, गुलबाई टेकरा पर शाम 4 से 7 बजे तक गुजरात के वरिष्ठ सर्वोदयी श्री जगदीश भाई शाह के सान्निध्य में विनोबा जयंती मनायी गयी।

विनोबाजी के जीवन वृत्तांत के अंतिम विचार सर्वोदय पात्र, शांति सेना, आचार्यकुल की जानकारी दी गयी।

पंकज प्राथमिक शाला, पंकज विद्यालय तथा वैद्यश्री एम. एम. पटेल कॉलेज ऑफ एज्यूकेशन के करीब 90 विद्यार्थियों ने कार्यक्रम में हिस्सा लिया। सर्वोदय पात्रों तथा शांति सेना रैली भी निकाली गयी। कार्यक्रम में हिस्सा लेने के लिए जो भाई-बहन आये थे वे भी एक-एक फल लाये थे। एक बड़ा टोकरा फलों से भर गया। दूसरे दिन अस्पताल के गरीब रोगियों में फलों का वितरण किया गया। सभा में 250 की संख्या में उपस्थिति रही।

सारा वातावरण भूदान यात्रा—भूदान गीतों के—सूत्रोच्चार से भर गया। मुख्य अतिथि श्री जगदीश भाई शाह ने भावविभोर स्वर में कहा, ऐसी अद्भुत विनोबा जयंती कहीं नहीं मनायी गयी होगी।

समग्र कार्यक्रम का आयोजन अहमदाबाद जिला सर्वोदय मंडल के लोकसेवकों एवं पंकज केलवणी मंडल के सहमंत्री श्रीमती उषाबहन पंडित ने किया। **–उषाबहन पंडित**

× × ×

युग पुरुष संत विनोबा भावे की 119वीं जन्म जयंती 11 सितंबर को प्रस्थान आश्रम, खानपुर, पठानकोट में श्रद्धा और भक्तिपूर्वक बनायी गयी।

कार्यक्रम का शुभारंभ सर्वधर्म प्रार्थना से हुआ। महिला कॉलेज द्वारा 'वैष्णव जन तो तेने कहिए' भजन तथा रमा चोपड़ा सनातन धर्म कॉलेज की ओर से भजन धुन प्रस्तुत किया गया। कार्यक्रम में हर तबके के गणमान्य नागरिकों, रचनात्मक कार्यकर्ताओं, शिक्षकों तथा चुने हुए विद्यार्थियों ने भाग लिया। कार्यक्रम की अध्यक्षता आश्रम संरक्षिका श्रीमती सुमति मित्तल ने की।

विनोबा जीवन-दर्शन एवं कार्य पर भाषण प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया। स्कूल-कॉलेज की 17 टीमों ने प्रतियोगिता में भाग लिया। कॉलेज वर्ग में कोमल महाजन प्रथम तथा पंकज सोहल तृतीय रहे। स्कूल वर्ग में पंकज प्रथम तथा विशाल द्वितीय एवं मनीषा तृतीय रहे। सभी प्रतियोगियों को साहित्य, विनोबाजी के चित्र तथा संदेश रूपी स्मृति चिह्न प्रदान किये गये। **–यशपाल गुप्ता**

× × ×

यद्यपि भारत सरकार ने विनोबाजी को उनके ब्रह्मनिर्वाण (15.11.1982) के अगले वर्ष भारत रत्न से सम्मानित कर अपना गौरव बढ़ाया किन्तु विनोबाजी की प्रतिष्ठा महात्मा गांधी के सच्चे अनुयायी और गीता के उपदेश को अपने जीवन में उतारने वाले संत और भूदान के लिए पदयात्रा करने वाले मार्गदर्शक के रूप में प्रसिद्ध है। विनोबाजी ने भारत की समस्याओं को समझने में जो पैमाना अपनाया वह ग्रामस्वराज के नाम से जाना जाता है। विनोबाजी ने कहा था कि ''आज असलियत में डेमॉक्रेसी है ही नहीं कम्यूनिज्म या सोशलिज्म आपस में कितना भी लड़ें, जनता बेचारी अपना नसीब देखती ही रहती है, असली उपाय है, जनता की शक्ति बनाना।''

विनोबाजी की एक सौ उन्नीसवीं जयंती पर गांधी शांति प्रतिष्ठान, सिविल लाइन्स, कानपुर में विनोबाजी के जीवन और कर्तृत्व पर चर्चा करते हुए वक्ताओं ने अपने विचार व्यक्त किये।

सभा की अध्यक्षता वरिष्ठ पत्रकार श्री विष्णु त्रिपाठी तथा संचालन श्री रामकिशोर बाजपेयी ने किया। **–बिन्दा भाई**

''हिमालय के लिए अलग नीति चाहिए''

हिमालयी क्षेत्रों के प्राकृतिक संसाधनों पर आक्रमण स्वरूप विकास नीतियों का प्रभाव सामने दिखाई दे रहा है। विस्थापनजनित विकास पर नियंत्रण करना सरकारों के बलबूते से बाहर है। बार-बार केंद्र पर निर्भर यहां का तंत्र हिमालय की गंभीरता और हिमालय से चल सकने वाली स्थायी जीवन-शैली एवं जीविका को भी भुलाते जा रहे हैं। स्थिति यहां तक पहुंच चुकी है कि इस क्षेत्र के वननिवासियों के पारम्परिक अधिकार और प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं संबर्द्धन के तरीकों की जबर्दस्त अनदेखी है। आयातित योजनाओं एवं परियोजनाओं ने हिमालय में अतिक्रमण, प्रदूषण व आपदाओं की स्थिति पैदा कर दी है जिसके कारण हिमालय टूट रहा है। भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्रफल के 16.3 प्रतिशत क्षेत्र में फैले हिमालयी क्षेत्र को संमृद्ध जल टैंक के रूप में माना जाता है। इसमें 45.2 प्रतिशत भू-भाग में घने जंगल हैं। यहां नदियों, पर्वतों के बीच में निवास करने वाली जनसंख्या के पास हिमालयी संस्कृति एवं सभ्यता को अक्षुण्ण बनाये रखने का लोक विज्ञान मौजूद है। इस संबंध में कई बार घुमक्कड़ों, पर्यावरण प्रेमियों, लेखकों ने विभिन्न साहित्यों, शोध पत्रों के साथ कई हिमालयी घोषणा पत्रों द्वारा सचेत किया है। इस ओर हिमालयी क्षेत्र में हो रहे जन-अभियानों तथा समुदायों के रचनात्मक कामों ने भी, सरकार का ध्यान कई बार आकर्षित किया है। भारतीय हिमालय राज्यों में आमतौर पर 11 छोटे राज्य हैं, जहां से सांसदों की कुल संख्या 36 हैं, लेकिन अकेले बिहार में 39, मध्यप्रदेश में 29, राजस्थान में 25 तथा गुजरात में 26 सांसद हैं। इस संदर्भ का अर्थ यह है कि देश का मुकुट कहे जाने वाले हिमालयी भू-भाग की सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं पर्यावरणीय पहुंच पार्लियमेंट में भी कमजोर दिखाई देती है, जबकि सामरिक एवं पर्यावरण की दृष्टि से अति संवेदनशील हिमालयी राज्यों को पूरे देश और दुनिया के संदर्भ में देखने की आवश्यकता है।

हमारे देश की सरकार को पांचवीं पंच वर्षीय योजना में हिमालयी क्षेत्रों के विकास की याद आई थी, जो हिल एरिया डेवलपमेंट के नाम से एक योजना चलायी जाती थी, इसी के विस्तार में हिमालयी क्षेत्र को अलग-अलग राज्यों में विभक्त किया गया है, लेकिन विकास के मानक आज भी मैदानी हैं, जिसके फल स्वरूप हिमालय का शोषण बढ़ा है। प्राकृतिक संसाधन लोगों के हाथ से खिसक रहे हैं। ग्लेशियरों, पर्वतों, नदियों, जैविक विविधताओं की दृष्टि से संपन्न हिमालयी संस्कृति और प्रकृति का ध्यान योजनाकारों को विशेष रूप से करना चाहिए था। सभी कहते हैं कि हिमालय नहीं रहेगा तो, देश नहीं रहेगा, इस प्रकार हिमालय बचाओ! देश बचाओ! केवल नारा नहीं है, यह भावी विकास नीतियों को दिशाहीन होने से बचाने का भी एक रास्ता है। इसी तरह चिपको आंदोलन में पहाड़ की महिलाओं ने कहा कि ''मिट्टी, पानी और बयार! जिंदा रहने के आधार।'' और आगे चलकर रक्षासूत्र आंदोलन का नारा है कि ''ऊंचाई पर पेड़ रहेंगे! नदी, ग्लेशियर टिके रहेंगे।'' ये तमाम निर्देशन पहाड़ के लोगों ने देशवासियों को दिये हैं। इसका अर्थ यही है कि हिमालयी क्षेत्र के जीवन एवं जीविका को ध्यान में रखते हुए हिमालयी संस्कृति, समाज एवं पर्यावरण को बचाये रखने के लिए ''हिमालय नीति''की आवश्यकता है। हिमालय देश और दुनिया के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहे, इसे ध्यान में रखकर के हिमालयवासियों द्वारा ''हिमालय लोक-नीति'' प्रस्तुत की गई है। **–सुरेश भाई**

45वां सर्वोदय समाज सम्मेलन

मौलाना वहिदुद्दीन उद्घाटन एवं डॉ. रामजी सिंह अध्यक्षता करेंगे

आगरा में 23 से 25 अक्टूबर, 2013 को हो रहे 45वां अखिल भारत सर्वोदय समाज सम्मेलन का उद्घाटन प्रसिद्ध इस्लामी विद्वान एवं शांतिवादी **मौलाना वहिदुद्दीन खाँ** करेंगे। मौलाना साहब को सोवियत रूस के राष्ट्रपति मिखाइल गोर्बाचोव ने देमिदरगस अंतर्राष्ट्रीय शांति पुरस्कार से, मदर टेरेसा ने नेशनल सिटीजनशिप अवार्ड एवं भारत सरकार ने पद्मभूषण से सम्मानित किया है। उन्हें राजीव गांधी सद्भावना पुरस्कार से भी नवाजा गया है।

सम्मेलन की अध्यक्षता प्रसिद्ध गांधीवादी विद्वान एवं भूतपूर्व सांसद प्रो. डॉ. रामजी सिंह करेंगे। 'रामजी बाबू' के नाम से लोकप्रिय डॉ. सिंह जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय के कुलपति, गांधी विद्या संस्थान के निदेशक, विक्रमशिला हिन्दी विद्यापीठ के कुलाधिपति, बिहार तरुण शांति सेना एवं बिहार सर्वोदय मंडल के अध्यक्ष रह चुके हैं। इसके अतिरिक्त आप अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं की महत्त्वपूर्ण जिम्मेवारियों में रहे हैं। सम्प्रति आप इंटरनेशनल सोसायटी ऑफ सोशल फिलॉसफी के मानद अध्यक्ष एवं सर्व सेवा संघ (अ.भा. सर्वोदय मंडल) के ट्रस्टी हैं। आपने हिन्दी एवं अंग्रेजी में 50 से अधिक पुस्तकों का लेखन एवं संपादन किया है। आपको दो बार विश्व धर्म संसद (पार्लियामेंट ऑफ वर्ल्ड रिलीजन) को संबोधित करने के लिए बुलाया गया है।

सम्मेलन का घोषवाक्य **'जल-जंगल और जमीन, हो जनता के अधीन'** होगा।

डॉ. एस. एन. सुब्बाराव के संयोजकत्व में हो रहे इस सम्मेलन का मुख्य विषय होगा **'उत्तराखंड की त्रासदी से सबक : विकास के अहिंसक मार्ग का प्रतिपादन'**। इसका विषय प्रवेश गुजरात विद्यापीठ के कुलपति डॉ. सुदर्शन आयंगर करेंगे। इसके अतिरिक्त सम्मेलन में ग्राम स्वावलंबन के प्रयोग, नशाबंदी आदि विषयों पर चर्चा होगी। एकता परिषद के श्री पी. वी. राजगोपाल सम्मेलन का समापन करेंगे।

सम्मेलन में देशभर से 5 हजार से अधिक प्रतिनिधियों के शामिल होने की उम्मीद है। रानी सरोज गौरिहार के संयोजकत्व में स्वागत समिति सम्मेलन की तैयारियों में लगी है। सम्मेलन के अवसर पर एक स्मारिका का भी प्रकाशन होगा। श्री चन्द्रमोहन पाराशर सभी कार्यक्रमों का समन्वय कर रहे हैं। **–महादेव विद्रोही**

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) अशोक भारत (प्रकाशक), सुरभि प्रिन्टर्स, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया वाराणसी से मुद्रित तथा सर्व सेवा संघ-परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001, फोन एवं फैक्स नं. 0542-2440385 से प्रकाशित। संपादक : बिमल कुमार। छपी प्रतियाँ : 1600